

वे दिन,
वे लोग

वे दिन, वे लोग

भतरंग सुस्मरणों का संग्रह

स्वर्गीय

भाषाय श्री निवपूजन सहाय

सम्पादन

बालेगुरुशेखर मगसमूर्ति



राजकमल प्रकाशन।

©

वाल्सेनुरोप्टर मण्डलमूर्ति चरणा
१९५२

एन.कमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली द्वारा प्रकाशित
तथा मबीम प्रेस दिल्ली द्वारा मुद्रित ।

मूल्य : चार रुपये पचास पैसे

क्रम

शिवपूजनसहायजी का हस्तलेख
महामहोपाध्याय सक्कनारायण शर्मा
स्वर्गीय ब्रजनन्दन सहाय 'ब्रजबस्त्रम'

१
२

६
११-१६
२०-२४
२४-३१

हास्यरसावतार पंडित जगन्नाथप्रसाद बनुरेरी
कसकता प्रवास के संस्मरण

१
२
३
४

३२-३८
३६-४४
४५-५१
५१-५६
५६-६०
६१-६६

पुण्य निरासाजी
त्यागमूर्ति 'निरासा'
मादरी महापुण्य महाशक्ति 'निरासा'
देवायम पुण्य 'निरासा'
वीनबन्धु 'निरासा'

स्वर्गीय बाबाय्य बद्रोगर दाम्नी
स्वर्गीय बालिकेयचरण पुरोनाथाय
शुद्ध पण्डित कृष्णबिहारी मिश्र
महाशक्ति जयदंठर 'प्रसाद'

१
२

६४-६८
६८-७४
७४-८२
८२-८७
८८-९७

९८-१०१
१०२-१०६
१०७-१०९
१०९-११५

स्वर्गीय धी रघुवीरनाथयन्त्री
स्वर्गीय बभ्रुनाथदत्त
जयपुर-यात्रा के संस्मरण
नाथपुर-यात्रा के संस्मरण

११६-१२०
१२१-१२३
१२४-१३१
१३२-१४१

राजपि पुस्तोत्तमदास टण्डन	१४२-१४
राजपि टण्डन आदर्श चरित्र की प्रतिभूति से	१४६-१४
अमरकीर्ति टण्डनजी	१४९-१४
श्री राजा राधिकारमणजी	१५०-१५१
आचार्य श्री मस्तिनबिलोचन शर्मा	१६०-१६१
डॉक्टर दिवाकरप्रसाद बिद्यार्थी	१६५-१६७
मेरा जीवन	१६८-१७४
एक निजी संस्मरण	१७५-१७८
परिशिष्ट	१७९-१८९

मेरे गाँव में एक पण्डितजी थे। वे ब्रह्म-
 के अच्छे विद्वान् थे। उनका शुभ नाम था रामप्रकाश
 पाण्डेय। वे दुसरों के महाराज के राजगुरु पण्डित-
 हंसजी के प्रिय शिष्य थे। पण्डितजी का नाम
 था पं. दुर्गादत्तजी। वे सिद्ध योगी और शिवजी
 के अतन्त्र आराधक थे। उनकी जीवनी जो फेरार
 अक्षयबट मिश्र ने टिन्दी में लिखी है। वह पुस्तक
 भण्डा (पटना) से प्रकाशित हुई है। उसी भूमिका
 मैंने लिखी थी। उसी भूमिका से मेरे जन्म की
 सही कहानी है।

मेरे गाँव में एक दूसरे पण्डितजी भी थे।
 वे भी ब्रह्म के अच्छे विद्वान् और कथानन्दक थे।
 उनका शुभ नाम था राममल पाण्डेय। पं. रामप्रकाशजी
 राममलजी का शिष्य थे। पं. राममल पाण्डेय
 थे शास्त्रीजी। मही मेरे कुल-पुत्रेय थे।

पं. रामप्रकाशजी के घर में एक ब्राह्मण उनके
 गुरु पण्डितजी आये थे। मेरे माता-पिता ने बड़ी
 भक्ति से पण्डितजी के दर्शन किये थे। मेरे एक
 चान्चाने पण्डितजी से श्राद्ध की थी। मेरे
 पिताजी एकौचनरा उच्च विवेक न क सके।

किन्तु चाचाजी की प्रार्थना सुनकर पल्लवसुजी ने कहा कि शिबजी की आत्मा बनने से सक्ता तो तपस्वि होगी।

ए रासमल्ल पाण्डेय ने काशी में रहकर विजनाथजी की ओर देखा तो रहकर लैलापाथजी की, बड़ी महीने तक, आत्मा की। यह शिवालय पल्लवसुजी के आदेशानुसार हुआ। पूजा की पूर्णति के बाद चाचाजी को पल्लवसुजी ने बुलाया और अपने अग्निहोत्र-कुण्ड से दिव्य निभृति दी। उसी के प्रयास से मेरी मृतबत्ता माता जन्तानवती हुई।

मेरे जन्म का सब पल्लवसुजी के पास बड़ी चाचाजी से गये। उन्होंने तामकण बसे जो अविष्यवाणी की, बह सफल हो गई। परसहसुजी के आशीर्वाद की चर्चा मेरी माता बाला किमा बली थी। पिताजी और चाचाजी भी काशी-वारी पल्लवसुजी के उपन्यास का कारण बसेते थे।

तपस्या का प्रभाव आता होता है। पल्लवसुजी के अग्निहोत्र-कुण्ड के चुटकी-भ्रमण से एक मृतबत्ता की जोल फलवती हो गई। वह दिव्य निभृति के एक-एक बण में जो असुत शक्ति थी मही मेरे जीवन-निर्माण के सहपात्र सिद्ध हुई। मेरे मन में ईश्वरान्ति ही ज उसी शक्ति ने बोया। उसी शक्ति ने मुझे सुखी मारवाँ बनाया।

महामहोपाध्याय सकलनारायण शर्मा

बाण नगर के निवासी पारश्वेय सकलनारायण शर्मा हिन्दी के उद्भूत लेखक बन्ना और पत्र-सम्पादक थे पर उनका नाम हिन्दी-साहित्य के इतिहासों में नहीं मिलता केवल 'मिथबन्धु विनोद' (चतुर्थ भाग) में उनका संक्षिप्त परिचय है। यह श्रेष्ठ और आश्चर्य का विषय तो अवश्य है पर साहित्यिक इतिहासों में बहुधा उन लोगों के ही नाम उजागर हैं जिनके एक हुए साहित्य से हिन्दी के भण्डार की शोभा और सम्पत्ति बढ़ी है। शर्माजी ने कोई बड़ा भारी-भरकम ग्रन्थ तो नहीं लिखा पर इस बीसवीं शती के आरम्भिक वर्षों में जो छोटी-मोटी पुस्तकें मिली वे उन युग की दृष्टि में बड़े महत्त्व की थीं और आज भी महत्त्वहीन नहीं हैं। उनका हिन्दी सिद्धान्त प्रकाश' का आज भी अतुलनीय है। 'मृष्टितत्त्व' 'प्रेम तत्त्व', 'ध्याकरत्न-तत्त्व' 'बाण-पुराणतत्त्व' आदि पुस्तकों से भी उनकी तत्त्व-विश्लेषण-शक्ति का परिचय मिलता है। अश्विनी पुस्तक में उन्होंने पुराणतत्त्व-सम्बन्ध की ओर हिन्दी लोगों का ध्यान आकृष्ट किया था—उस समय जब हिन्दी में पुराणतत्त्व-शोध की मार किमी का ध्यान न था। उन्हीं दिनों 'राजा-पत्नी' और 'अपराधिता' नामक दो मौखिक उपन्यास भी लिखे जा करिष-विषय के विचार में बड़े सुन्दर हैं तथा भाषा का उनकी अपनी शैली थी। छोटे-छोटे शायरी की मरक भाषा लिखने में उस समय भी उनका कोई मानी नहीं था और आज तो है ही नहीं। राधा बिलाम प्रग (पटना) की साप्ताहिक 'विद्यया' के वे बनेक वर्षों तक सम्पादक रहे और उसमें कभी-कभी गहन राष्ट्रीय विषयों पर भी सम्पादकीय अद्ययण तथा टिप्पणियाँ लिखा करने लगे। उनमें अतिरिक्त विषय को भी सुझाव देना देने की उनकी बला इतनीय हाजी थी। सुझाविसूझ विषय

को सुगमता से समझा देने में भी वे अद्वितीय ही थे। फिर भी साहित्य के इतिहासों में उनका पञ्चोचित उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

यह एक विचारणीय विषय है कि त्रिम महानुभावों में पत्र-पत्रिका सम्पादन-काम में तत्पर रहकर जन-समाज में हिन्दी का अनवरत प्रचार करके साहित्यानुयाय उत्पन्न किया उनको इतिहासकार प्रायः भूल-सा गये हैं। उन सज्जनों को भी वे भूल गये हैं जिन्होंने संसदी छोड़कर अपनी भोजस्थिती बाणी से ही जनता को हिन्दी की ओर आकृष्ट किया है। पत्र-पत्रिका-सम्पादकों में श्री हरिकृष्ण चौधर, पं० अमृतसाह बक-बर्नी मेहता कज्जाराम शर्मा श्री भगवानदास हाकना पं० मन्वकुमार शैव शर्मा पं० माधवराव शर्मे स्वामी भवानीदयाल सत्यासी पं० बाबुराव बिष्णु पराङ्कर, अमर शहीद गणेशचंदर विठायी पं० कृष्णचाम्भ मालवीय पं० लक्ष्मणरायणभय्य पं० श्यामरायण पाण्डेय आदि अनेक विद्वानों ने पत्रकार के रूप में हिन्दी की या चिरस्मरणीय सेवा की है उसका बलिचित् उल्लेख हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहासों में कहीं कुछ है नहीं, पर साहित्य के इतिहासों में तो अधिकांश का उल्लेख तक नहीं है। क्या उनकी प्रचारार्थक और रचनात्मक सेवा उल्लेख्य नहीं है? फिर इसी प्रकार हिन्दी के प्रभाववासी बक्ताओं में पं० मदनमोहन मालवीय डॉ० मधवानदास लाला लालपतराय पं० दीनानाथ शर्मा स्यारयाण बाबुम्पठि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन स्वामी सरयदेव परिव्राजक आदि मनीषियों ने अपने मापनों से हिन्दी का जो उपकार किया है वह उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त पत्रकारों और बक्ताओं के समान कितने ही पत्रकार और बक्ता और भी हो चुके हैं जिनकी महत्त्वमानिनी हिन्दी सेवा के सम्बन्ध में पूरक स्वतन्त्र लेख हो लिखे जा सकते हैं। किन्तु संसदी और बाणी के बनी इन हिन्दी-सेवकों का कहीं सादर स्मरण भी नहीं किया गया है। ऐसी बधा म पं० मकलनारायणजी जगिष्ठ रह गये तो कोई बर्द दुर्घटना नहीं हुई। शर्मन्त्री भी कपतनी और बाणी दोनों के पनी वे।

शर्मन्त्री ने लक्ष्मण सीम शर्मा तक 'मिठा' का सम्पादन-कार्य करने हुए आधुनिक युग की प्रजातन्त्र-बला में हिन्दी की जो उल्लेखनीय सेवा अपनी

सिद्ध सेवनी से की बहु मन्त्रे ही कहीं इतिहास में अंकित न हा पर मविष्य के उन्नत युग में उसका भूमिगत होकर रहना । उसकी बाणी न भी हिन्दी की भाँव और ताक जमाई । उस प्रकार-युग में उनका व्याख्यानों से हिन्दी का पक्ष पुष्ट हुआ और उसके प्रसार-विस्तार के लिए भी उबर काम लयाग हुआ ।

परि उदार विचार-दृष्टि से देखा जाय तो कितने ही लोकप्रिय कथा बाचक और 'मानस'-व्यास भी हिन्दी-प्रचार में बड़े सहायक हुए हैं । काम भी रामायणी व्यास तुलसी-साहित्य की जो सेवा कर रहे हैं और उनसे बनता में जो भक्ति-साहित्य का प्रेम जाग्रत हो रहा है बहु ध्यान देने काय्य है ।

स्वदेशी-आन्दोलन के युग में व्यासमात्र और सनातन-धर्म के गार्हार्थ-संघर्ष का का पीगणस हुआ या बहु महारमा यात्री के राजनीतिक आन्दोलन के आरम्भ होने से पहले तक देश-भर में हलचल मचाना रहा । उस धार्मिक और सामाजिक मुद्दारे के आन्दोलन में दर्याबी में समस्त बिहार प्रान्त में घूम-घूमकर सनातन-धर्म के मन्त्र से संकड़ों व्याख्यान दिये य तथा धाम्नाई करके भी सनातन-धर्म की मर्यादा बचाई थी । वे वे ता तीर्थ यय (व्याकरण-नाम्य-सांख्यटीप) पर वैदिक और पौराणिक साहित्य का भी गम्भीर अध्ययन-मनन किया था । अपने बाद्यबाहु मापणां में ब पमगात्रों क प्रमाण-जायों के उदाहरण देने करते थे तो उनकी स्मृति मणि की प्रखरता खनि कर देती थी । बहु ध्वनि-विस्तारक यय (लाइड-श्रीकर) का युग नहीं था । तब भी ब हुजारीं श्रोताओं का मनन बाचक व्याख्यान से मंत्रमुग्ध कर देते थे । काम पढ़ता था कि उपनिषदों और स्मृतियां उनकी सरस्वती के बाँचे द्वारा बांध रखी हैं । संसृति और बंगभा ता वे मातृभावा के ममान बोधत थे । बसृता के समय उनकी हिन्दी संसृतिनिष्ठ हीठी थी परन्तु संयनकाल में बहु सरसातिवरत बन जाती थी । व्याकरणमर्मगत भाषा लिखने में बिरता ही कोई उनकी बराबरी में आ सकता था ।

मेर है कि 'गिधा' में एने उनके धर्मम्य मग्पाइकीम बलम्य और लल काम बकपा दुग्म हा नय । यनि उनका संवह प्रकाशित हुआ रहना तो

भाषा-क्षेत्रियों का अध्ययन-अनुशीलन करनेवासे साहित्यिक अनुसन्धाओं को प्रोत्साहन में अमूल्य सहायता प्राप्त होती ।

सन् १९०७ में उन्होंने भाय नगर में नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना की थी । वह आज भी अपने स्वतन्त्र मकान में स्थित है । उसके द्वारा हिन्दी-प्रचार के जो कार्य हुए हैं वे ऐतिहासिक महत्त्व के हैं । देवी राज्यों और सरकारी दफ्तरों में उसके अथक प्रयत्न से हिन्दी का प्रवेश था हुआ ही कच्छकता-विरवविद्यालय में भी पं अयन्नाथप्रसादजी कतुबेदी की सहायता से समा ने हिन्दी को स्थायित्व दिलाया । काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के प्राथमिक शिक्षक स्वामिन्दर दासजी का भी इस काम में पूरा सहयोग रहा । उनसे धर्माजी की परिचय मंत्री थी । उन्होंने अपनी 'हिन्दी कोविद रत्नमाला' नामक पुस्तक में धर्माजी की सखि जीवनी प्रकाशित की थी । सभा के प्रधान-मंत्री और धर्माजी के अस्मिन् मित थी ब्रजमन्दन सहाय 'ब्रजबन्धन' तथा इनके पिता बाबू विबलचन्द्र सहायजी की सखि जीवनियाँ भी उस पुस्तक में छपी थीं । धर्माजी के साथ मिलकर ब्रजबन्धनजी ने समा द्वारा जो हिन्दी-सेवा की वह सभा के जीवनैतिहास की बड़ी महत्त्वपूर्ण सामग्री है ।

यह निस्संकोच कहना पड़ेगा कि 'ब्रजबन्धन' जी की रचनात्मक प्रतिभा को परन्तु धर्माजी ने अपनी 'सिखा' में कई बार टिप्पणियाँ लिखकर उन्हें प्रोत्साहन प्रदान किया । उन्होंने जब बंकिम बाबू के प्रसिद्ध उपन्यास 'वन्द्योत्तर' और 'कनकाकाश का इन्कार' (ग्रहण) का हिन्दी-अनुबाध किया तथा 'उत्तर' एवं 'वृद्धाचार' (ग्रहण) नामक नाटक लिखे तब धर्माजी ने 'सिखा' द्वारा उनकी सेवा-शक्ति को उन्मुख हृदय से आशीर्वाद दिया था । कहना चाहिए कि धर्माजी के समान निष्ठावान विप्रदेवता का आशीर्वाद अक्षरशः सफल हुआ जिससे ब्रजबन्धन जी का साहित्यिक जीवन सदा कीर्ति की गौर में पल्लवित्त रहा । किन्तु उन्होंने 'कनका' के जीवन से सम्बद्ध एक नये दृष्टिकोण का नाटक लिखा था कुछ दिनों तक पाठ्य-पुस्तक के रूप में भी स्वीकृत रहा । उस पर धर्माजी ने अपना मतभेद भी प्रकट कर दिया था । धर्माजी समाज की नवा-परम्परा में आधुनिक स्वच्छन्द विचार को उबररस्ती ठुमने के

विरोधी थे। पुण्यवर्म के अनुसार सामाजिक सुधारों को भी वे शास्त्रीय मर्यादा के अन्दर नियंत्रित रखने के समर्थक थे। वे स्पष्ट कहते और लिखते थे कि धार्मिक और सामाजिक विषयों में विचारसूय उच्छ्वलता अत्यन्त मयावह है। विधवा-विवाह मूर्तिपूजा और धाड़ पर उनके व्याख्यान ऐसे तर्कसंगत होते थे कि इनके विरोधी और पक्षपाती दोनों इन विषयों पर पुनः विचार करने को विवश हो जाते थे।

उपर्युक्त समाजी वैसासिक मुक्तपत्रिका 'भाग्य-विहीनि' और उसके बाद मासिक 'साहित्य पत्रिका' के सम्पादन-कार्य में 'प्रबन्धस्तम्भ' की तथा शर्माजी से मलाह किया कथ्य वे क्योंकि उनको केवल साहित्य रचना का ही सम्पादन या पत्र-सम्पादन का विरोध अनुभव नहीं था। विष्णु शर्माजी तो लेखों के संगोपन सम्पादन और सम्पादकीय लेखादि शिखर में ऐसे सिद्धहस्त थे कि एक ही बैठक में एक मंज का मसाला तैयार कर डालते थे। उनका कथन था कि लेखक की मौलिकता को बचा कर ऐसी बाधधानी से सम्पादन करना चाहिए कि उसकी तस पर तप्टर न लग जाय। एक बार 'प्रबन्धस्तम्भ' की की सम्पादित की हुई एक माण्डु-मिषि को देखकर उन्होंने क्ये हुए शर्माजी को पुनः कुछ परिवर्तित रूप में लिखवा दिया और कहा कि लेखक के स्वतन्त्र विचार से सहमत न होने पर उन काण्डर उड़ा देने के बदले उक्त पर पाद-टिप्पणी में मनुभेद प्रकट कर लेना उचित है।

शर्माजी के पट्टिपिष्य भी बहपविहारी धारण की थे। वे छात्रावस्था में ही शर्माजी से पढ़े थे। वे प्रबन्धस्तम्भ की के पड़ोसी और शर्माजी के प्रति पश्य पदालु थे। उन्हें शर्माजी ने ही साहित्य-सेवा में लगाया और अनन्य ई-बदरमल तथा नाम-अन का अनुयोगी बनाया। वे पन्ना झाई कोर्ट के ऐडवोकेट थे और मठ अगस्त १९९० में ही सावेरबासी हुए हैं।

शर्माजी ने ही मठ सबसे पहला लेख (होली में मन्दरा का नाथ) अपनी 'पिषा' में प्रकाशित किया था। वे बराबर नये लेखकों को प्रोत्साहित करने लहे थे। वेरा लेख देखकर उन्होंने प्रोत्साहित किया था कि नया क पुनःकाल्य में प्रतिदिन बाहर पुस्तक पत्र-पत्रिकादि पड़ा करो और नये-नये लेखों तथा बाधों को लिखकर रखत जाओ। उन्होंने आन्ध

भी दिया कि स्कूल में जो छेप छिपाने को दिये जाते हैं उन पर सेल धिक्कर मुझे दिखाया करो। इस तरह कई विषयों के लेखों को उन्होंने स्वयं घोषा और 'सिसा' में छापा। व्याकरण की बातें वे बड़ी आसानी से समझा देते थे। वे भी गिरफ्तार के बावनालय में आकर बैठते और पाठकों को पढ़ने की रीति दिखाया करते थे। उनके मतानुसार कुछ-न कुछ नई बात सीखने के लिए ही पढ़ना चाहिए। वे स्वयं अक्सर पढ़कर बतला देते थे कि इसमें यह बात सीख रखने योग्य है।

उनके घर में ठाकुरबाड़ी और सरस्वती मठ पुस्तकालय था। ठाकुर जी की पूजा उनके बड़े भाई पाण्डेय सरस्वतीरायण सर्या किया करते थे। वे अपने भाई को पिता-तुल्य मानते थे। स्वयं तो अपने घरबागार में ही अधिक समय बिताते थे। स्वाभ्यास के बाह बाहर निकलने पर मित्रों के घर जाते और रास्ता चलते भी हाथ में पत्राक्ष की मुद्रिणी लिखे 'दिवस दिवस' बपले रहते थे। समा की तरह सिद्धनाथ महादेव प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर भी उनका बहुत था। वहाँ सिवजी के हंसनाम निरमित रूप से गिरफ्तार जाते थे। संस्कृत स्तोत्रों की एक पुस्तक (सिद्धनाथ कुमुदावलि) उन्होंने स्वयं रची और छपाई थी। उक्त मन्दिर में लगभगता से नाम कीर्तन करते हुए भी मैंने उन्हें देखा था। नाम-जप तो वे हर जगह करते ही रहते थे। बासबीठ करते समय भी बीच-बीच के अक्षराय-शर्कों का अनुपयोग वे नाम-जप में ही करते थे। वे परम चिन्मत्त और भारतीय संस्कृति के अग्रदुजारी थे।

उनकी वैद्यभूषा साधारण थी। दिल्लीवाक पूरा पबिताऊ बोली और मोल टोपी अक्सर मिजई और बादर। मिजई के बन्द कमी तुने हुए और बादर भी कपड़े से बाने या बीछे पड़ी तक लटकती हुई। कहीं रिही घमा-सम्मेलन में जाते समय अक्सर बटनदार जेमेरात पहनकर रेयामी साफा बाँधते थे। यह साफा भी धिर में ऐला लटपट बँपता कि मोलठे समय तुल्ला जाता और वे समेटते-सॉसते रहते। उनकी सादगी में छिपी विद्वत्ता का अग्रज अपरिचित भ्यक्ति नहीं कर सकता था। मर जाता तो बन्धों बीसी थी। कई बार 'अजबस्तम' को मैंने उन्हें रोम्ने भी देखा—“बपीबुद्ध विद्वान् में लङ्कपन आप ही में देखा है।” पबिजजी

हंसते लगते । किसी नवविवाहित युवक से बातें करने समय तो उसके साम्प्रत्य-जीवन की बातें भी पूछ बैठेंगे । यह बेबस जनका मनीषिनोद था । वे ज्ञे नहीं सरल-हृदय थे । हंसते भी वे रिक्त जोलकर । अकथन व प्रत्यक्ष से जान पड़ता कि हड़बड़ी में हैं । बोझते भी जैसे ही थे । सिकते भी वे सम्पापुण्य । सिम्बाबट कठिनाई से पड़ी जाती थी । 'वज्रवस्त्रम्' जी के एक बार कहा भी था कि लक्षणविकासप्रेषक 'विद्या' बाल कम्पा-विटरी को ही पश्चिमी की सिम्बाबट पढ़ने का अन्वय है, और किसी को अधिकार नहीं है ।

विद्या-व्ययम और सुमिरण-अजन में अर्हन्ति लक्ष्मीम रहने व कारण वाच्येयकी ऐसे अस्तम्भस्त स्वभाव के लापरवाह थे कि उनके पास अच्छी कलम-रवात भी नहीं रहती थी । ये तो सम्पादक पर कभी पिती पेशिल से ही जैसे-जैसे कायज पर सम्पादकीय लेख पसीट आते थे । एक बिट्टी लिखनी हो तो कायज का टुकड़ा लोजने लगेंगे । विद्य ममय मारा-मागरी प्रचारिणी सभा द्वारा राहुपति डॉ० यज्ञेन्द्रप्रसादजी को एक अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया गया मने पश्चिमी से निवेदन किया कि 'भारतकथा' लिख बालिष् । उन्होंने छूटते ही कहा कि जब मेरे हाथ कापते मने हैं ये ही किनी भीज पढ़ना कीज ? नहीं 'वज्रवस्त्रम्' जी के बहनोई थी अनुभाषप्रसाद कुम्हार बैठे हुए थे जो हिन्दी-सकल भी थे । वे बोले कि पश्चिमी लिख दें तो मैं साफ मकल कर दूँगा । पश्चिमी ने मेरा आग्रह स्वीकार कर आत्मबया किया थी, जिसकी मूल प्रति और मुक्तार छाह्र की मकल की हुई प्रति भी बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के संग्रहलय में विद्यमान है । यह आत्मकथा सम्पेदन के त्रमासिक मुकपत्र 'साहित्य' के दो अंकों में त्रमण प्रकाशित हुई थी ।

जब शर्माजी लखनऊ-दिल्लीविद्यालय में संसृण के व्याख्याता प्राध्यापक नियुक्त हुए तब अपने अन्तरंग मित्र पं० अनुभाषप्रसाद अनुबेरी के साथ उनके निजी मकल (मीनालय पोष स्ट्रीट) में रहते थे । 'मठ पाना-अष्टम (कलकत्ता) में रहते समय वे भी प्रायः उनके पास आता था । टीका विज्ञान सम्पा ममय बैठकर बेबस मुद्दानुद माया पर ही विचार-विनिमय किया करने व । अनुबेरीजी भाषा व मर्मज्ञ पारखी

वे और शर्माजी तो प्रकाश बँयाकरण थे ही । शर्मा भाषा-विशेषज्ञों की बातें सुनने से निरस्य ही आनन्दित होती थी । उन लोगों का भाषा-विचार अतिशय मूढम होता था । उन लोगों के पास जो हिन्दी-पत्र-पत्रिकाएँ आती थी उनकी भाषा पर तो बहस होती ही थी नई निकसी हुई कोई प्रतिष्ठित पुस्तक भी उन लोगों की पंजी दृष्टि से नहीं बच पाती थी । भाषा पर उतनी शारीकी से निरस्य प्रति विचार करते मने किसी साहित्य-सेवी का नहीं देना । कभी-कभी महाकवि 'निराळा' भी बहोँ बातें और उस नियमित भाषा-विचार-सोपनी में साक्षिकार बोलते हुए उन लोगों को प्रभावित करते थे । किन्तु 'निराळा'जी ऐसे क्षीणमान हैं कि चतुर्विंशती अब उनके अनुशासित छन्दों पर बिलोब छिड़ते तो 'निराळा' जी उठ परिहास को उपहास न समझकर उसका आनन्द ही लेने में मस्त रहते । इसका कारण यह भी था कि चौबेजी का कोई बिलोब कभी निरर्थक नहीं होता था । उसमें साहित्यिक सरलता मरी रहती थी और शर्माजी तो संस्कृत-साहित्य के साथ वैदिक प्रमाणों से भी अनुशासित कविता का समर्थन करने लगते थे । मुझे स्मरण है कि 'मठवाला' का प्रथमक प्रकाशित होते ही मैं उसे लेकर शर्माजी के पास गया तो उन्होंने प्रथम दृष्टिपाठ में ही 'जुही की कली' को नवपुगीय कविता में सर्वोत्कृष्ट अन्वोक्ति कह कर 'निराळा'जी के परोल में उनकी प्रतिभा की झुर्रि झुर्रि प्रशंसा की । उसी दम उन्होंने चौबेजी को वस्तुतः की कई सुन्दर अन्वोक्तियाँ सुनाकर पुण्य सम्बन्धी बहुतों उक्तिमों से मुग्ध कर दिया । वे दोनों विद्वान् एक-मात्र भाषा की विपुलता और सार्थकता पर बिशेष ध्यान रखते थे । कहना न होना कि इस मुन के कारण ही वे 'निराळा'जी के प्रथमक बन गये थे ।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिनेट-हॉल में कई बार शर्माजी के भाषण सुनने के अवसर मुझे प्राप्त हुए थे । बंगीय विद्वानों में संस्कृत और बंगला में निर्दोष भावण करके करतल-ध्वनियों का उपहार लना साधारण काम नहीं है । किन्तु शर्माजी उन स्वाभिमानी विद्वानों के बीच रहकर अपनी विद्वता के प्रताप से जो प्रतिष्ठित अविश्व कर लम यह हिन्दी संसार के लिए औरत का ही विषय है ।

महामहोपाध्याय सत्कृष्णाराधण शर्मा

उसी मिनट-हॉक में श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के समापतित्व में प्रकृत भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का महाधिबंशान कुंज या बिसके बाप ही उसी स्वाम पर अतिरिक्त भारतीय हिन्दी-पत्रकार सम्मेलन स्वामी भवानीन्यायकी भी अध्येसता में हुआ। उसके स्वापताप्यस शर्माजी ही थे। उस अवसर पर उन्होंने पत्रकार-कला और सम्पादक-कर्म पर जो भाषण किया था उसकी प्रशंसा वहाँ क अंग्रेजी और बंगला-पत्रा में हुई थी। उसी भाषण में हिन्दी के लक्ष्यकीर्ति सम्पादकों की नामावली गिनात हुए उन्होंने कहा था कि सबकी मन्त्रिण जीवनी प्रकाशित होनी चाहिए जिसमें हिन्दी-पत्रकारिता का इतिहास स्वतः तैयार हो जायगा। आशा है कि उनकी स्मृतियों के ये कुछ बिल्लरे कम उनकी याद को ताजा करने के लक्ष्य सिद्ध होंगे।^१

^१ लेखन : १६ मार्च १९६०।

स्वर्गीय व्रजनन्दन सहाय 'व्रजवल्लभ'

: १ :

गोस्वामी तुलसीदास और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की बृहत् जीवनियों के सर्व प्रथम लेखक स्वनामधेय बाबू शिवनन्दन सहाय के आप एकमात्र सुपुत्र हैं। बिहार राज्यान्तगत बाहाबाद जिले के अक्षितयारपुर नामक ग्राम में आपका शुभ जन्म विष्णु संवत् १९३१ में भाद्र-शुक्लाष्टमी को हुआ था। वर्तमान शवत् २ १३ की भाद्र पूर्णिमा बुधवार को आप नगर के अपने निवासस्थान पर सन्ध्या समय आप भोसोड़वासी हुए थे। आपका घोषवाह-संस्कार बरधर (घाहूबाह) के मंगल-शुभ पर हुआ था। विपुल के अन्तिम दिन (महात्म्या को) आपका विधिबत आय हुआ।

आपका विद्यारम्भ जन्म-ग्राम में ही हुआ था। गया-बिना-स्कूल से आपने इण्डियन पास किया था। आप पटना के बिहार मेसजल (बी० एन०) कॉलेज में बी ए० तक पढ़कर बकालस्य प्राप्त हुए थे और आठ नगर में बयालीस वर्षों तक बकालस्य की थी। आप आठ-नाण्टी-ब्रजा रिणी समा के आरम्भिक काळ के प्रधान-मंत्री थे। आपके समय में समा की उत्तरात्तर उन्नति और प्रसिद्धि हुई। 'नाण्टी-हिंदीपिथी', 'समस्यापूर्ति प्रकाश' शिवा प्रभाभक्ति-प्रचारक आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन आपने किया था। आप लगभग दस दर्जन पुस्तकों के लेखक व जिनमें कई उपन्यास नाट्य गद्यनाय्य प्रहसन सर्वसाध्य कविता और कीवनी हैं। उपन्यासों में 'सीन्धुपौषासक' 'आत्मपीन' 'विस्मृण समाद' और 'वि-वर्यन' मुख्य तथा जय-जाहिर हैं। प्रथम का धनुषार मराठी और पुनरावृत्ति तथा बूने का भी गुजरती में ही गुवा है। नाटकों में 'बलक-

मार्बन' अन्तर्गत है। 'मैथिल-कोटिष्ठ विद्यापति' नामक प्रथम सिखरर आपने ही सबसे पहले विद्यापति को बंगला-साहित्य से हिन्दी-साहित्य में स्थावर प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया था। 'बिहार-बन्धु' (१८८५) 'माख भविनी' (प्रथम) 'कवि-मन्त्र और कविमंडल परिभा (काशी) 'शाङ्ग' (१८८५) आदि पुराने हिन्दी-ग्रन्थों में आप बराबर लेख कवितादि लिखा करते थे।

आपके पुराने साहित्यिक मित्रों में कुछ के नाम विधायक उल्लेख्य हैं श्री बालमुकुन्द गुप्त पं० प्रतापनारायण मिश्र ('शाङ्ग'-सम्पादक) पं० दुर्गाशंकर मिश्र ('उचित बन्धु'-सम्पादक) लाला श्रीनारायण पांडु रामहृष्य वर्मा (भारत-जीवन) पं० जयलालप्रसाद बनसोड़ी पं० प्रियोतीलाल शोस्वाती कबिबर हृदिशोष जी और रत्नाकरजी बाबू रामानुजराय दाम मिश्रबन्धु, पं० पद्मविहारी वर्मा श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि। हिन्दी में सर्वप्रथम साहित्यिक मौखिक उपन्यास लिखने का श्रेय आपको ही है। श्रीमान छत्रपुर-सरेण में आपको साबर निर्वासित कर विशेष रूप से सम्मानित किया था।

काशी-नागरी-प्रचारणी सभा की स्वयं-सदस्यी के अहमद पर मध्या की बीर में आपको अभिनन्दन किया गया था। बेंगलूर (मुंबैर) में बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का आ बौरहवाँ महासम्मेलन मन् १९३६ में हुआ था उसके बाद ही सभापति के तथा आपका साहित्यिक साधन अत्यन्त महत्वपूर्ण था। आपने भारत के बाल-हिन्दी-गुरुकुलान्त में अपना विद्यालय पुस्तकालय बालसम्बन्ध दे दिया था जो आपके पूज्य स्वर्गीय पिता बाबू गिबनन्दन महाय के स्मारक के रूप में सुरक्षित है। मन् १९२० में बिहार-राष्ट्रभाषा-सम्मेलन का बंदे ह्वार रूप से का बसावृद्ध-साहित्यिक-सम्मान पुरस्कार सक्षप्रथम आपको ही प्राप्त हुआ था। भारत-नागरी-प्रचारणी सभा द्वारा राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी की अभिनन्दन-सम्पन्न समिति द्वारा के शुभ अवसर पर आपको सभा की भारत में प्रथम-सहित 'विद्यासम्पति' की उपाधि प्राप्त की गई थी।

आपके भारत-सुत्रों में उल्लेख्य श्री रामानन्दन महाय एम० ए० बी० एम० के ऐतिहासिक लेख प्रायः हिन्दी-ग्रन्थ-परिभाषा में प्रकाशित हो

है। साहित्यिक बंधन-परम्परा अक्षुण्ण है।

बापकी रक्षावस्था का समाचार सुनकर मैं आपके दर्शनार्थ आया गया था। रोगघाटा पर अस्थिमानावरोध देखकर बड़ी कड़वा हुई। उत वना में भी मसजद के सहारे बैठकर आपने एक बंटे तक साहित्यिक चरमरण सुनाये। आपके मर्झों में ही मुनिए—

मेरे पिताजी (बाबू गिबनचन्द्र घाहा) गवर्नमेंट के ट्राम्पलेटर थे। उनके साथ पटना रहकर मैं पटना-कॉलेजिएट में पढ़ता था। स्कूल क हिन्दी-पाठक पंडित बिहारीलाल चौबे मुझे बड़े स्नेह से पढ़ाते थे। वे अशुद्ध साहित्यिक व्यक्ति थे। उनकी बीवनी 'सरस्वती' मे छपी थी। जब कभी वे कान ऐंठते थे तब मालूम होता था कि कानों को मरोड़कर उसाड़ लेंगे। जही गौघमाजी (कनैठी) की बहीनत उनकी बताई हुई एक-एक बात मुझे आज तक याद है। वे हार्डस्कूल में ही मर्झों की व्युत्पत्ति सिखाते थे। मर्झों के अर्थ और प्रयोग जो उन्होंने बतलाये थे वे कॉलेज की पढ़ाई में भी काम आते रहे। पंडित अम्बिकादत्त व्यास जब छपरा और भागलपुर क जिला-स्कूल में हेड पंडित थे तब पटना आने पर मेरे पिताजी के पास ही प्रायः ठहरते थे। उन्होंने भी मुझे सङ्कल्प में ही कविता बनाने के नियम सिखाये थे। वे जब मर्झ के तब नई कविता और नया श्लोक मुझसे सुनते थे। उनके आने की तब बकर पिताजी मुझे कविता और श्लोक कथ्य करा देते थे। पिताजी जब पटना सिटी के हस्पिटल में 'बाबा मुनेरामिह साहबबाबा' में निजने जाते थे तब अक्सर मुझे भी साथ ले जाते थे। बाबा मे ही मुझे सिद्धक पढ़न की प्रेरणा दी। जब मैं बी० एम० कॉलेज में पढ़ता था तभी उन्होंने अपनी 'सबस्यार्पुति' पत्रिका के सम्पादन का काम सौंप दिया। उनकी देख-रेख में काम करने मे उनके स्वर्गीय होने के बाद भी मैं उनका सहारा हुआ काम कुछ दिनों तक करता रहा। वे काम्यशास्त्र के प्रकाण्ड पंडित थे। पंडित अम्बिकादत्त व्यास के साथ उनकी बात चीन होने सम्पत्ती थी तो उन्म-शास्त्र और अलंकारशास्त्र की समस्त पुन बाणें सुनकर शास्त्रीय ज्ञान बहुत बढ़ जाता था। यही हाल पंडित रामोदर शास्त्री का भी था। वे सङ्गठिकाय प्रेस में उन्म-शोधन आदि

काम करने से । मस्त्र के से बहुत अच्छे विद्वान् थे । पंडितों से प्रायः संस्कृत में ही बलिदाने से । उनकी पत्नी कभी किसी परगुदर के सामने होकर बात नहीं करती थी । मछली मछली होने के कारण परमा प्रसा नहीं मानती थी पर सबसे सामने मूँह मोड़कर बात करती थी । याही मस्त्र व भी जानती थी । कभी-कभी मुझसे संस्कृत में ही कोई छोटा प्रश्न पूछती थी । वे एनी बख्शती थी कि सो नर समरे दोनों हाथा सं मेकर अंधी बीडियों पर लगाना बड़ जानी थी । महाशय्य-वर्णन का मस्त्र में परम्पर भाषण करत मैंने सुना था । साम्प्रतीकी हिन्दी की पुस्तका पर विशेष ध्यान रखते थे । कुतकों और पत्र-पत्रिकाओं की भाषा में अंगुष्ठिया को प्रश्न पढ़ते थे । चौबेजी और ध्यामती प्रायः महाशय्य-वर्णन प्रश्न में जान थे । साम्प्रतीकी से उन दोनों की बातचीत प्रायः भाषा की पुस्तका पर ही होती थी । ब्राह्मण के साहित्य-सेवी ध्याकरण-मन्त्र भाषा किन्तु पर कम ध्यान देने हैं । पर, वे सोब शब्द ध्याम के मन्त्र और मन्त्र में ही लगे रहते थे । अब वे लोभ भाषण व बहम करने लगते थे एक बाबू रामदीन मिश्र सुरत मिश्रद्वारा संपाकर उन लोगों के सामने परोस देते थे । बाराबकुमार (बाबू रामदीन मिश्र) के समस्त विद्वानों का सम्मान करनेवाला गुणगारी उन समय कोई न था । उन्होंने अनेक लेखकों और कवियों की किसी बुझकों काजी रुपये देकर मछली भी थी । उनके बच्चे के बार कई बाल्यागियां अग्रजागित पाशु मिश्रियों से भरी थी । किसी को उन्होंने निरुत्तर-विनुष नहीं किया । गोदी होने पर, बच्चा के विवाह में अनाथ में कष्ट पाने पर और किसी लड़क म पढ़न वर साहित्य-सेवी लोग उन्हीं के पास पहुँच जाते थे और निरुत्तर ही महान्-महारण होने थे । बच्चा एसाही और रानी होना कर्मि है ।”

मेरे बचप बना बच्चे पर भी बाप संस्मरण सुनाने ही जाने व एक निरु में बहु बहुराज लीला बना भाषा कि दूसरी बार भारत बुर्गा । पर एक मछीने व अन्तर ही बापके बच्चे की लड़क मिनी । मैं पुछार करने भी समा था और टीक महाशय्य के दिन बापक पाठ में भी मस्त्रिनिन हुआ था । सुम बहुत बख्शान है कि बापसे साहित्यिक

संस्मरणों को सुनकर न सिद्ध मका । इसी तरह अनक बयोभुड साहित्य-
सेवियों के साथ मयूस्य साहित्यिक संस्मरण बने गए ।^१

२ ।

आप निवासी प्रतिष्ठित बकील बाबु ब्रजबन्धन सह्याय 'ब्रजबन्धन' हिन्दी
मसाल में बिहार के सबसे अधिक यशस्वी और सफल उपन्यासकार थे ।
उनका 'सौन्दर्योपासक' नामक पहला मौलिक उपन्यास बतमान इसी की
प्रथम बधाव्ही में ही प्रकाशित हुआ था । उस युग के साहित्य-जगत में
उसकी काफ़ी पूज रूही । उस समय के दैनिक साप्ताहिक एवं मासिक
पत्रों और पत्रिकाओं में उसकी खूब चर्चा हुई क्योंकि उन दिनों वह
अपने ढंग का अकेला उपन्यास था । वह हिन्दी का सर्वप्रथम गद्य
काव्यात्मक रूप-बाह्य माना जाने लगा ।

सम्पादनकार्य द्विवेदीजी ने कबिबर श्री मंचिकीररण सुष्ठजी से
उसका समालोचनात्मक परिचय लिखवाकर अपनी 'सरस्वती' में प्रका-
शित किया था । उसके आरम्भ में जो 'प्रेम' नामक कविता है वह भी
'सरस्वती' में मुद्रक प्रकाशित हुई थी ।

वह उपन्यास पटना के अक्षयबिहास प्रस से प्रकाशित हुआ था ।
उसी प्रेस से साप्ताहिक पत्रिका 'विधा' निकलती थी । उसके सम्पादन
में पंडित लक्ष्मणाचरण धर्मा । ब्रजबन्धनजी से मर्माजी की बड़ी
बनिष्ठता थी । उक्त प्रेस के साथ ही ब्रजबन्धनजी का अपनापन का
सम्बन्ध था । अतः 'विधा' में 'सौन्दर्योपासक'-सम्बन्धी कई लेख छये ।
पंडित ईश्वरीप्रसाद धर्मा पंडित पारमनाथ बिप्राठी श्री रामोदर सह्याय
'वर्तिकर' पंडित अरायबट मिश्र और बहिन रामरहित मिश्र के द्वारा
म साहित्य-क्षेत्र में उनकी बड़ी धारक बर्धी ।

ब्रजबन्धनजी को पर्वत प्रोत्साहन मिला । उन्होंने फिर जाने बदे

१. मूल शीर्षक : श्री ब्रजबन्धन सह्याय ब्रजबन्धन' ।

प्रकाशन : अगस्ती, १९२७— 'साहित्य' (वि० हि० सा० प०) ।

अच्छे उपन्यास लिखे। 'विस्मृ-समाप्त' अर्द्धविलास में ही निकला। पुस्तक मन्डार (सहैरिया मराठ दरमंगा) से 'विस्मरसंम' प्रकाशित हुआ। काशी-भायरी-प्रचारिणी समाजी मनोरंजन-गुप्तक-माला में 'शासकीन' मुद्रित हुआ। ऐतिहासिक, दार्शनिक, सामाजिक सब तरह के उपन्यासों में उन्होंने भाषा का साहित्यिक सौन्दर्य प्रदर्शित किया। प्रेम परक 'सौन्दर्योत्सव' में भी उन्होंने आध्यात्मिक विचारों का यथास्थान समावेश किया है।

जिन उपर्युक्त लेखकों के लिये 'विद्या' में छपे थे सबने उनकी सरस और ललित भाषा-शैली की ही प्रशंसा की थी। उन दिन कथावस्तु, चरित्र-चित्रण आदि की समीक्षा बहुधा कम होती थी। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने की ओर बहुत कम आलोचक ध्यान देते थे परन्तु भाषा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। आज बात उलटी हो गई है। बुनानुसार रीति बरकती रहती है।

उस समय नये ढंग की रचना के लिए ललक को बहुत अधिक प्रशंसा मिलती थी। नया विषय नई शैली नया अस्कार, नई प्रतिभा नया रंग-रूप जहाँ-कहीं दीन पड़ता था अधिकांश विद्वान् और पत्र सम्पादक उसका स्वागत करते थे क्योंकि हिन्दी को आगे बढ़ाना या उसके कर्बुर को सुन्दर बनाना या उसके साहित्य को समृद्ध करना था। इसके बिना किसी ने उत्कृष्ट के प्रति कोई ऐसा असहिष्णु नहीं था कि उसके गुणों की ओर ध्यान भी जाने मूढ़ छे। साहित्य-क्षेत्र में राय इस बहुत कम था। बहु अधिपत्र सापथों का युग था। उन लोगों की साधना का फल आधुनिक काल में प्रत्यक्ष है।

किन्तु मेरे कहने का यह आशय नहीं है कि उस समय समाजाचना की कड़ी कमीठी न होने के कारण ही वज्रवल्गुमजी लक्ष्मीनि हुए। उस समय भी 'भारत मित्र' (कलकत्ता) 'बी बेंटेल्बर-नयाबार' (बम्बई) 'वाटान मुबंर' (इलाहाबाद) 'मध्य-प्रचारक' (दिल्ली) 'पंचाल-सज्जिता' (लाहौर) आदि साप्ताहिक-मासिक पत्र-पत्रिकाओं में उनसे बहुप्रमाण उपन्यास के गुण-दोष का विवेचन भली भाँति हुआ था किन्तु इन बात में किसी का मननर नहीं था कि भाषा-मीष्ट्य की दृष्टि में 'सौन्दर्योत्सव' अनुपम है।

बिहार के पूर्वोक्त क्षेत्रों तो ब्रजबल्कमजी के सुपरिचित मित्र ही थे पर उनके क्षेत्रों को भी किसी ने पत्रपात्रपूर्ण कहने का साहस नहीं दिखाया। इसका मुख्य कारण उस युग की निर्मल परिस्थिति ही थी। बिद्योपल हिन्दी-हितपत्र की दृष्टि से ही स्रोत बिचार करते थे। ब्रज भाषाई द्विवेदीजी द्वारा सम्पादित 'सरस्वती' में उस उपन्यास की सराहना हुई तब सौरी की बात ही क्या क्योंकि द्विवेदीजी महापत्र की लहरों से गुजरने वाली प्रत्येक पंक्ति उस समय प्रामाणिक मानी जाती थी। इसीलिए पंडित ब्रजबल्कमजी ने 'द्विधा' की सम्पादकीय टिप्पणी में 'सरस्वती' की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करते किया था कि 'सौन्दर्योत्सव' की श्रेष्ठता पर इनसे बाढ़ी मुहुर कम गई है। बात भी ठीक थी।

मेरा अनुमान है कि इस प्रवृत्तिशील युग की समीक्षा-व्यक्ति के अनुसार मनोबैज्ञानिक कसौटी पर भी उनके उपन्यासों की जांच की जाएगी तो वे अनामयिक नहीं सिद्ध होंगे। किन्तु ब्रज के उपन्यास शुभ्र नहीं हैं। बाण-द्विधा-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व मंत्री टाकुर बन्धु विचारविहारी उनकी सभी पुस्तकों का सबह करके एक सुसम्पादित प्रत्यावली प्रकाशित कराना चाहते थे। पुस्तक-संग्रह भी कर चुके थे प्रकाशन के प्रबन्ध में बड़ी लगन से लगे थे पर अचानक चल बसे। काम अधूरा रह गया। यदि प्रत्यावली निकल पाती तो इस शोध-समीक्षा-प्रदान युग में साहित्यिक अनुसंधानकों को बड़ा काम होता। साहित्य सेवियों की प्रत्यावली प्रकाशित करने पर समर्थ प्रकारों को ध्यान देना चाहिए। मात्र के शोधकर्ता ऐसी प्रत्यावलियों की शोध करते हैं, पर बहुधांग में उन्हें निरास ही होना पड़ता है। हिन्दी में प्रमुख अविचारों साहित्यकारों की प्रत्यावली की बड़ी कमी है। "मस अनुसंधानाभ्यस जी" आलोचनात्मक साहित्य के निर्माण में बहुधा बाधा बह रही है। 'ब्रज बल्कम-उपन्यास' के प्रकाशन से हिन्दी उपन्यासों के विकास-रूप के दिग्दान का एक महत्वपूर्ण अध्याय मिलने में महापत्रा मिलेगी।

ब्रजबल्कमजी के निता भी गिबनन्तसहाम भारतेन्दु-युग के सामान्य सजबों में थे। उन्हेंनि दोम्बामी मुल्लमीराम भारतेन्दु हर्षिबन्धु उप

पक्ष सन् उपकलात्री और मिश्र-मुस्मों की जीवनीयों लिनी थी। मुसलीमों की वृत्त जीवनी को पुनः संशोधित करके बहू छोट पण पक्षिका तथा संस्करण बिहार राजमाया-परिषद् (पटना) से प्रकाशित होनवाला है। आता है कि उनकी लिनी चारलेन्दुकी की जीवनी भी परिषद् से पुनः प्रकाशित होगी। उनकी लिनी उपकलात्री की जीवनी का भी तथा संस्करण पटना की उपकला-समिति से निकला है। उनमें उम्हले सन् १९१२ तक का ही जीवन-वृत्त लिखा था। किन्तु सन् १९१० के बाद सन् १९३२ तक का जीवन-वृत्त पटना हाईकोर्ट के जेजोरेण्ट की अक्षयबिहारी तारणजी ने लिखकर पूरा कर दिया है क्योंकि उपकलात्री सन् १९३२ ई० के भारतमें ही मारेनवासी हुए थे। उक्त शब्दजी भी गन अमल (सन् १९३०) में मारेनवासी हो गए। वह भी आर-निवासी ही थे। उनके माय चन्द्रबल्लभजी की धनी मैत्री थी। दोनों पटोनी थे और परम रामभक्त भी।

'चन्द्रबल्लभ' जी का मूल निवासस्थान अम्बियापुर (बटवापर्व) नामक गाँव था जो आज नगर से एक-दोड़ कोस दूर पश्चिम में है। वह बनी-बानी वापसों की प्रसिद्ध बस्ती है। वही में उनके पूर्वज आरा के बाबुबाबाद मुस्म में आ बसे थे। उनके पिता पटना के सरकारी अडली इतर में हिन्दी-अनुबाधक थे। जब उनकी शिक्षा पटना-म्बियन की एम० (बिहार वेमपत्र) बौज में हुई थी। जिस समय वह बी० ए० का छात्र थे उसी समय 'समस्या'नि नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन करने थे। उस पत्रिका के संचालक थे पटना मिटी के हरि मन्दिर के प्रधातापिपाना बाबा मुपगविहू पादुबान। बाबा मुपगविहू भी हिन्दी-बहि थे। उन्होंने श्री गिबनन्दन महापत्री नामकगाही एम्ब क अनुगर्ण थे। एक बार आज के उनके निवास-स्थान पर जो नवाराहू में गुण गविन्दविहू की बस्ती मनाई गई थी जिसमें 'अंध' का आयोजन हुआ था और हिन्दी के स्वनामक्य महाबहि पहिल प्रयोष्याविहू उपाध्याय 'हिन्दीय' आयोजित होकर आए थे। उस समय इन पत्रिकार्यों के संचालकों की 'अंध' का प्रमाण पाने का गुदाब मिना था। जब गिबनन्दन

महामंत्री पेशवा पाकर पटना से जाय चले गए, तब बाबा साहब की सलाह से अपने पुत्र को ही पत्रिका-सम्पादक का भार सौंप दए। उसके पहले 'ब्रजबन्धन' की भी समस्या-पूर्तियाँ भी पत्रिका में प्रकाशित हुआ करती थी।

'ब्रजबन्धन' की बड़े प्रतिमासाली विद्यार्थी रहे। साहित्य-सेवा तो उनकी पैतृक सम्पत्ति ही थी। आभाषस्था में ही एक छोटे अंग्रेजी उपन्यास का हिन्दी-अनुबाद करके प्रकाशित कराया था। उनका विवाह बयाल के बीरभूमि नामक नगर क एक बंगीय कायस्थ-परिवार में हुआ था। वह बंगला के बड़े अन्धे विद्वान् थे। बंग-साहित्य-सम्बाद् बकिम बाबू के कुछ उपन्यासों का हिन्दी-अनुबाद भी उन्होंने किया था। सबसे पहले उन्होंने ही 'मैक्सि-क्रोडिक विद्यापति नामक ग्रन्थ लिखकर महाकवि विद्यापति को बिहार का निवासी प्रमाणित किया था। वह ग्रन्थ आरा की नागटी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ था। सभा ने बिहार-उपद्-भाषा परिषद् की आर्थिक सहायता से उस ग्रन्थ का दूसरा मवा संस्करण भी प्रकाशित किया है। उक्त परिषद् से २६ हजार रुपए का 'बयोवृद्ध साहित्यिक-सम्मान-पुरस्कार' सर्वप्रथम उनको ही मिला था। उनके रहे साहित्य से बाहृष्ट होकर छतरपुर (मध्यप्रदेश) के साहित्यानुदयी मंगल न उन्हें सादर आमन्त्रित करके सम्मानित किया था। उस समय थी मूलावरायजी (वर्तमान 'साहित्य-मन्धेन'-सम्पादक) वहाँ महाराज के निजी मन्त्रिण थे और मिथदन्तु भी वही थे।

सन् १९१४ में अगिला भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का पाँचवाँ महाविधेयन बननरूप में हुआ था। पंरित भीरर पाठ्य सभा पनि थे। श्री इयामसुन्दरबामजी वहाँ के कालीचरण हाईस्कूल के हेड मास्टर थे। स्कूल के जीवन में ही सम्मेलन का पण्डाल बना था। आरा नागटी-प्रचारिणी सभा की ओर से एक प्रतिनिधि-अण्डल वहाँ गया था। ब्रजबन्धनजी उम मण्डल के मुखिया थे। उपर्युक्त अण्डलबिहारी मरमजी भी उम अण्ड में थे। आभाष बदरीनाथ वर्मा पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा आदि भी साथ ही थे। ये भी गया था। सम्मेलन में प्रसिद्ध साहित्य मैत्रियों द्वारा ब्रजबन्धनजी का आदर-गल्हार देवकर हम बाप का पता

कमता या कि साहित्य के विद्वानों में उनकी कौसी प्रतिष्ठा है। क्या म सुन्दरदास जी और मिथलपुरी में उनका मित्रत्व व्यवहार दखल में आया। हिन्दी के मुखरि राम बेबीप्रसाद 'पूर्ण' उनमें मिलने के लिए प्रतिमिषि-निवास में आया। जबलपुर के पसम्बी 'मानस-टीकाकार' भी विनायक राव साठे उनसे बार-बार गले मिले। बयाबूठों का बहू मिलन महोत्सव बड़ा भावपूर्ण और हृदयप्राही था। जैसे इस सब दुर्लभ हो गए।

कोटली बार मयाम्या में भी कपकभाजी के बानाम सब लोग उतर पड़े। वह हनुमन्निवास में रहते थे। उनका लिख-लाल का वाक्य बपूष था। वह 'रामचरितमानस' और विषय शिक्षा की प्रसंगानुसूक्त पंक्तिवा को बहूकर ही बाठपीठ करते थे। बाहे किन्ही विषय का प्रसंग छिड़ा हा किसी तरह का कोई प्रश्न ही क्यों न हा सबके लिए वह उन्ही दोनों प्रश्नों की उपयुक्त पंक्तियों का प्रयोग करते थे। उनकी स्मृति-शक्ति की अमीकिकता देखकर मैं तो म्दम्ब रह गया। उनमें व्यवस्थापकी और व्यवस्थापिकाय की बसीय बढा थी। सुलसी-साहित्य पर उनका अनामात्मक अधिपार था। वह बिहार के सारन जिले के निवासी थे। भक्त मान पर उनकी टीका प्रसिद्ध है। रामचरित-साहित्य के भर्मजा में उनका भारणीय स्थान है। पूर्वके हुए प्रश्न ता थे ही कुछ साहित्यिक भी थे।

भाग की नायती प्रचारिकी मया की स्थापना सन् १९०१ में हुई थी। उनका संस्थापकों में पंडित मकलनारामभाजी अग्रतम थे। आरम्भ से ही व्यवस्थापकी उनके प्रधान मंत्री थे। उनके समय में सनी ने देली नरबादा और मन्वाटी इलाकों में हिन्दी-भागी प्रचार के लिए उन्मेगरीय प्रयत्न किए थे। उन्होंने अदेजी में बड़ मम्ब-बीड़ मया गियल मिनार और छाबावर सबन सेठे थे। उस समय के पिचबिद्या मयों में भी हिन्दी-साहित्य के प्रमिसाण के लिए उन्होंने 'मिमोरेडम' भर परररर पपन उद्योग किया था। कमकता बिचबिद्यालय में हिन्दी का प्रवेय कराने में उनकी पंडित जमनालप्रसादी जगुबेदी में बड़ी सहायता मिली थी। मया की धानिक 'साहित्यिक पत्रिका' के मप्यादन प्रचारक में भी वह बड़े योगोयोग में सहयोग प्रदान करने थे। मया की

आरम्भिक उन्नति का अविनाश भय उन्हीं को है। उनकी हिन्दी-सेवा से प्रभावित होकर ही स्वामिमुन्दरपासनी ने उनकी उनके पिताजी की और पंडित सकलमारामशर्मा की बीमनियाँ 'हिन्दी-कोश' रत्नमाला' नामक अपनी पुस्तक में प्रकाशित की थी। प्रधान-मंत्री के पर स बचकर ग्रहण करने के बाद समा ने भी उन्हें 'विद्या-वाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया था। बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के बेपूखराय (मुँवर) वाले वापिक अविशेषतः के समापति बड़ी हुए थे। उन्होंने अपना साध साहित्य-संश्लेषण अपने जीवन-काल में ही आरा के शाल-हिन्दी पुस्तकालय को अपने स्वर्गीय पिता के स्मारक के रूप में समर्पित कर दिया था जो बड़ा मोबापमोपी है।

'प्रबलकर्म' जी ने अष्टसुपुत्र की रमेधनन्दन सहाय एम० ए बी० एल० भावकक जमशेदपुर की ताता-कम्पनी में एक बन्धु बोहरे पर हैं। वह भी साहित्यकार हैं। उनकी रचनाएँ 'मापुटी' (कलमक) में छपा करती थी। पर अब वह अपनी बंग-शरम्भरागत साहित्य-सेवा से विमुख होकर पढ़ते हैं। प्रबलकर्मजी अब मुम्बईवा पर थे में उन्हें देखने आठ गया था। उस समय उनसे भी वार्तालाप हुआ वह भी साहित्यिक संस्मरणों के रूप में था। बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रभासिक मूलपत्र 'साहित्य' में उन पुराने संस्मरणों का प्रकाशन हो चुका है। उस समय मेरे मन में यह भाव उठा था कि उनसे अतीत-भुव के संस्मरण यदि लिखा जाये गए होते तो वह भी हिन्दी-साहित्य की एक अमूल्य विधि हानी। अनेक पुराने साहित्यकार अपने साथ ही बहुबन्धु संस्मरण लेते बने गए। पंडित बनारसीदासजी अनुर्वरी ने 'विद्याल भास्त्र' द्वारा साहित्यिक संस्मरणों के प्रकाशन को काशी उत्तमन और प्रोत्साहन दिया। तभी ने यह कर्म इस रूप में बंध रहा है। इससे साहित्य-अर्थ की बहुत-सी अज्ञान बाधा का उद्घाटन होया जिससे मोषकों को भी नहायना मिशगी।

'प्रबलकर्म' जी का छंद कुछ नादा था। उन्हें नैदाने बर का अल्पिन सवमना पाहिण। उनकी कनी-छंटी दादी उनके बहरे को अल्प बनी थी। अज्ञान में बहान्य करन जाने समय बह काला बोवा भी

पहले थे। मायादेवता बनीं। कोट पोती और माया दुपल्ही टोपी ही उनकी स्वामाविक बनाया थी। उड़ी लेकर मुबह-नाम टहलने निकलने थे। मगनग अम्मी-पिचामी बर्ष की मातु में महीना बामार रहन के बाद उनका वैहाण्ड हुआ था। जीवन पर उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहा। तान-यान में बहु बड़े संयमी थे। रहन-सहन में भी मादमी पलन थे। प्रायः यह कुनियाकर बालने थे। याबाद में कुछ लसलमाह थी। अदीदी और बल भाषा के माहियत का बड़ा मम्मीर अध्ययन किया था। साहित्यिक बर्षा में उनकी अध्ययनशीलता का परिचय मिलता था। भाषण करने का अभ्यास तो था ही क्योंकि एक मुनी बकील थे पर ममा-अम्मीरों से उदासीन रहा करते थे। केवल लिखते रहने में ही उनको मन्त्रोय और दालि का अनुभव हाता था। उनके अक्षर मुबाध्य तो होते थे पर सुन्दर नहीं। कहा करने थे कि मेरे अक्षर मेरे पिताजी के मन्ह-मन्हे अक्षरों के बड़े-बड़े प्रतिकर हैं। बाण सही थी। पिता-पुत्र का हान भी एक-ठा था।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में बहु कवि एवं कथाकार के रूप में चिरम्बरपीय रहेंगे।^१

^१ भारत : २ अक्टूबर (गोपी अहमदा), १९२१ ।

महाजन अक्टूबर १९२०—मामिह 'महाजन (दीनारकी विरोधादि), पटना ।

हास्यरसावतार पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

मन्वपुर (मुंगेर) क निवासी प० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी हिन्दी सभार के उन प्रमुख साहित्य-अहारियों में थे जिन्होंने हिन्दी के विकास में हिन्दी के हित की ही बात सोची थी और उसकी उन्नति के उपाय करते रहने में ही अपना सारा जीवन अर्पित किया था।

अपने युग में चतुर्वेदीजी हिन्दी भाषा के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् माने जाते रहे। भाषा-विषयक उनकी विशेषज्ञता ने उस समय के कितने ही बुराबर सेवकों को परेशानी में डालकर उनका लोहा मानने के लिए बाध्य किया था। उन दिनों के भाषा-सम्बन्धी विवादों में वह बड़ी निर्भीकता से अपने पक्ष पर हड़ रहते थे। गुन्नापुर भाषा की शारीरिकी परामर्श में उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। इसी परत में उनका जीवन का प्रत्येक क्षण व्यतीत होता था। चाहे वह बाजार में रहे या ट्रेन में सफर करते हों हर बड़ी उठते-बैठते बसने-फिरने बाधने-अटारते वह व्याकरण-सम्पित शुद्ध भाषा पर ध्यान रखने में संजम रहते थे। बाठपीठ के प्रथम में भी उनके सामने कोई असुद्ध भाषा बोलता था तो वह सुपरिचित व्यक्ति को मुण्ड टोककर सावधान कर देने में पर दूसरों को किसी ध्याय से ही मुँह बंद ज्ञात करा देते थे। पुस्तकें और बच-सत्रिकाएँ पढ़ते समय दुष्प्रयोगों पर निगान करते चलते थे। नाटक देखते समय अभिनेताओं के कथोपकथन पर ही उनका विशेष ध्यान रहता था। सभा-सम्मेलनों के भाषणों में भी उनके कान चौकते रहते थे।

कलकत्ता-निवासी उनके मित्रि महान (सीताराम घोष स्टूडेंट) में महाबहाणाध्याय प० सवसनाराम शर्मा भी माने जाते थे। वह कलकत्ता

विश्वविद्यालय में संस्कृत के व्याख्याता और सिद्ध व्याकरण थे। जना विद्वान् जब माय विम बैठे तब प्राय भाषा और साहित्य के विषय में ही बालाचार कहते थे। यह निम्न का प्रमग था। दोनों ही नैमी आदरा थी। दोनों ही बड़ी मूर्खमूर्खिता में भाषा के प्रचलित रूप का परिष्कार किया करते थे। 'मनुवाक्य'-अणु में रहने समय में प्रायः उन भाषा के ब्यनार्थ आता था। अब उन लोगों की दृष्टि की गहरी रीठ के एकाग्र उदाहरण भी नीचे दे रहा हूँ।

एक अपचार में छपा वाक्य था—“यह समाचार समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ था।” उन लोगों का संशोधन इस प्रकार था—“समाचार पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ था।” व्याकरण विषयक अशुद्धियों पर ताब ध्यान देने ही से वाक्यों के अन्तर्गत रूप पर भी निगाह रखते थे। उन लोगों के विचार से 'हिचकिचाहूँ' शब्द के अर्थ 'हिचक' सिम्ता ही उपयुक्त है। उन्हीं और वाक्यों के ऐसे अनेक उदाहरणों को यहाँ सिलकर उन मित्रगोप्त्री की साहित्य-वर्षा का विसृष्ट विवरण देने के लिए रवाना नहीं है पर समझदार के लिए उपर्युक्त संकेत पर्याप्त है।

चतुर्वेदीय अतिरिक्त राष्ट्रीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति हुए थे। अत्ररक्त बहु ब्राह्मण अधिवेशन या और काहीर में हुआ था। उन्होंने अपने मातृ में भी भाषा की प्रचलित अशुद्धियों पर हिन्दी-संगार का ध्यान आहूट किया था। अन्त—‘अम्पारक सरस्वती’ लिपिता अशुद्ध और ‘अम्पारक-अम्पारक’ लिपिता ही शुद्ध बतलाया था और भी विद्वान् ही उदाहरण उन भाषक में दृश्य है।

उन समय में भारत में रहता था। जिस गाड़ी से वह काहीर जा रहे थे जायी रात में वह आग स्टेपन पर पहुँची। आग की लामरी-प्रवाग्नी समा के पुनःवापस प्रकल्प की मुकदेबतिह और जैसे पुण्य माण्ड परता। उन्होंने हुनने हूँ कहा “तुम सोच जाड़े की गल में जाये हा और दूनी बड़ी गर्ने के पर की शीतल दमतिह जाड़े की मोगान करने लाया। यह बहुरत उन्होंने मुक-अम्बर (अम्पूरी का अन्व) के दावा लिये और अपने मातृ की ही उनी प्रतिमा की ही। हिन्दी लिपिता और हिन्दी-लिपियों में बहु प्राय यही पृजा बन्धन है हिन्दी में चिन्ता

और बिद्वी का पता किससे हो ? किस हिन्दी-पत्रिका के साहक हो ? कौन हिन्दी-पत्र खरीदकर पढ़ते हो ? सास-मर में किससे रुपये की हिस्सी-पुस्तकें खरीदते हो ? अब तक कौन-कौन-सी पुस्तकें पढ़ चुके हो ? सब मुझ हिन्दी पर उनकी अचाह ममता थी ।

उनके प्रथम दर्शन का सौभाग्य मुझे लखनऊ में प्राप्त हुआ था । वहाँ अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का पाँचवाँ महाधिवेशन कविवर प० श्रीधर पाठक के सभापतित्व में हुआ था—सन् १९१४ में । आरा की नामची प्रचारिणी सभा की ओर से प्रतिनिधि-मण्डल बहूँ गया था । उसमें आचार्य बहरीनाथ वर्मा भी अवबबिहारी सरध पंडित ईश्वरीप्रसाद वर्मा श्री ब्रजलाल सह्याय 'ब्रजबल्लभ' श्री एगुनाथप्रसाद मुख्तार आदि साहित्य-सेवी सम्मिलित थे । अनुबेदीवी सम्मेलन के प्रत्येक धार्मिक अधिवेशन में अवश्य जाते थे । प्रत्येक अधिवेशन में सभापति निर्वाचन का प्रस्ताव सर्वप्रथम वहाँ उपस्थित करते थे । सभापति के नाम का अव-विस्मरण करने में उनका साहित्यिक विनोद गुनन के लिए सभी प्रतिनिधि ऐसे उत्कण्ठित रहते थे कि मंच पर उनके जाने ही का तल-ध्वनि होने लगती थी । बहु बाबू क्यामगुन्दर दासजी के धर्तियि थे जो उन दिनों वहाँ कालीचरण हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक थे और सभी स्कुल क प्रायश में सम्मेलन हुआ था । पर बहु बिहार के प्रतिनिधि-निवास में सभापति पाठकजी क्यामगुन्दर दासजी कविवर राम ईश्वरीप्रसाद 'पूबे' और मिश्रबन्धुजी को धाव भेकर आये तथा बिहारी प्रतिनिधियों का उम्होने स्वयं सबसे परिचय कयमा । बिहार वर भी उनका अवाप स्नेह था ।

उस सम्मेलन के पहले ही दिन लखनऊ के उर्दू-प्रेमियों में एक सभा करके हिन्दी की लिखनी उद्घाई थी । बीबेबी ब्रजबल्लभजी और पंडित बहरीनाथ मट्ट के उद्योग में हमारे ही निम अधिवेशन के बाद राउ में सम्मेलन की एक विषय बटव हुई तिसमें कविवर 'पूब' जी ने उर्दू-सभा की प्रत्येक भाग का -भूँहाइ अचाव अपनी छाशाप-रहित कविताका में निया । उनके आयुर्विधि का विलक्षण चमत्कार वेग सभी प्रतिनिधि

विस्मयानन्द से पुष्कलि हा उठे । सतत-सम्मेलन के कार्य-विचारण में बह प्रयोग सविन्यास प्रकाशित है ।

उसी पौषर्षे सम्मेलन में बहारमा बुधीपमजी के मुपुष श्री हरिद्वय-जी ने छठे सम्मेलन के लिए साहौर का निमन्त्रण दिया था । किन्तु भाउ-बायी मूचनाओं क अनुसार बह राजा महेन्द्रप्रताप सिंह के निजी सचिव हाकर विदेश चले गए, इसलिए छठा सम्मेलन साहौर में न हाकर सम्मेलन क प्रबन्ध-केन्द्र प्रयाग म ही हुआ । मैं उमके भी गया था । आचार्य व्यासमुन्दर रामजी उतके अध्यक्ष थे । लाला रामप्रसाद के बाग म बड़ा गानदार उमक हुआ । मास्टरु सता पंडित बदरीनाथयन चौपरी 'प्रमथन' उममें पबारे थ । बह भारतन्दुजी की मासात् प्रतिमूर्ति ही थे । बेगभुषा भी हरिद्वयजी थी । बुशारे म भी उतकी समकनी मुपधी थीर उतके रईमी टाट-जाट पर प्रतिनिधियों की टकटकी बंध गर्न । सम्पादका धम्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी भी प्रथम दिन भाये थे । बह जीवन-मरकनी निजी अध्यक्ष सम्मेलन म नहीं गये । सम्मेलन के समापतिस्त्र का बह बपवर टुकटये ही रहे । उनके सुभानमन से प्रगम्य होकर सब लोग यही कह रहे थे कि व्यासमुन्दर रामजी के सभापति होने म ही द्विवेदीजी इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए हैं । लोगों आचार्यों की साहित्यिक स्पर्दा उग मुप में बहुत प्रसिद्ध थी और ऊँचे स्तर के साहित्यिक मन्वस में बह चर्चा का विषय भी बनी रहती थी । किन्तु द्विवेदीजी जहाँ मुटव स्वाभिमानी थे वहाँ बह मन्थे हिन्दी-सेवक के प्रति सम्मान प्रदर्शन करने के धपने मिदाल्य म श्री अटल थ । उन्होंने सभापति को उगमुक्त हृदय क जो आशीर्वाद दिया उसमें व्यासमुन्दर रामजी की हिन्दी-महा पर अत्रत्य पुष्पवृष्टि कर वाली । उस समय सभापति क मन्त्रक नदनों को देगाकर प्रतिनिधि भी भाव विधोर हो उठ थ ।

हिन्दी-संसार का मासूम है कि कानपुर में जब राजवि पुण्यानमदान टण्डन के समारोहाब में महामम्मेलन का अधिवेशन हुआ था तब पट्टन द्विवेदीजी मैं ही सभापति होने क लिए आइह किया गया था किन्तु जूरी (कानपुर) में बहुत दिना तक रहे चुबने के कारण उन्होंने यह कहकर अधिवेशन प्रवृत्त कर दी जि मैं मात्र तक सभापति नहीं हुआ तो जब

अपने ही घर में समापति बन बट्ना मेरे लिए सम्भव नहीं हो सकता । फिर जब चापों और से बाणहू का अत्यधिक प्रवाह पड़ा तब स्वागतार्थ्य होने को तैयार हो गए । उनका वह स्वागत भाषण पढ़ने ही योग्य है । केवल टण्डनजी की अल्पज्ञता के कारण ही वह स्वागतार्थ्य भी हुए क्योंकि टण्डनजी की निरहू सेवा के लिए उनके हृदय में काफ़ी आदर भाव था नहीं तो सम्भवतः से वह सर्वत्र उदासीन और ठट्ठ ही बने रहे ।

हाँ तो उसी छठे सम्मेलन में चतुर्वेदीजी ने बंगभाषा के 'अनुप्रासर अट्टहास' नामक समनवीदार संग की गर्भोन्तियों के प्रवाह में 'अनुप्रास अन्वेषण' नामक निबन्ध पढ़ा था । अन्वेषण हुआ पौतदार कामा रूता पुस्त पात्रामा रेसमी अंगरठा बसन्ती साफ़ा सामने की वेब में केनदार पड़ी बिट्प्रसन्न मुसके पर मन्-मन् हास्य-रेखा किये जब चौबेजी मच की और बने तब तास्मियों की पङ्कग्राह्य से पङ्काल गूँज गया । निबन्ध पाठ के बीच-बीच भी हृष्यनि होती रही । अन्वेषण-अर ठा उत्कास पुन वातावरण बना ही रहा प्रतिनिधि लोभ एस्ते में भी उसी की चर्चा करके आनन्द उठाते रहे । अन्वेषण में भी उसकी चर्चा लूब ही हुई । अन्वेषण के पास उसकी भाषा भी आने लगी । वह सम्भवतः की कृतमासा म तो एता ही चौबेजी ने भी उसका पुस्तकाकार में स्वयं प्रकाशित कर दिया । उसकी सक्ति-अन्वेषण योजना और अन्वेषण विनोदपुन एता देखने ही योग्य है ।

उनकी किसी पुस्तक की माया-संती में टोर-टोर हास्यरम विन्नु सहस्य पाठकों का आनन्दित करण करने हैं । उनके उपन्यास नाटक निबन्ध आदि सब दुलभ ही रहे हैं । 'अन्वेषण मासत्री' 'संसार-चक्र' 'गुप्त' 'विचित्र विचारण' ('गुप्तिकर्म' 'दृष्टता' वा हिन्दी-रूपान्तर) 'गद्यमाता' 'अपुर मित्र' आदि पुस्तकों के नाम भी लोग भूलते जा रहे हैं । अन्वेषण एक गुणवत्तापूर्ण प्रकाशित होनी चाहिए । उनके स्मारक-सम्य की पाठ्यविधि बिहार हिन्दी-आश्रित्य गण्येस्य के सङ्ग्रहालय में बहुत दिनों से पड़ी हुई है । उसी के माय-भाषा यदि उनकी कभी रचनाया तथा भाषणों का भी प्रकाशित कर दिया जाए तो उनकी

हास्य रसात्मक शक्ती का अध्ययन करने में बड़ी सुविधा हो जाएगी। उन्होंने बाबू बालमुकुन्द गुप्त के सम्पादन-काल से ही 'भारतमित्र' में जो व्यंग्य-विनोद विषय वे-वे भी साहित्य-अण्डार में संक्षिप्त होने योग्य हैं।

उनके सुसुत्र एवं रसात्मक चतुर्वेदीजी कहते थे कि 'भारतमित्र' में उनी साथी सामग्री प्रकाशक साहित्य-सम्मेलन भवन के सचयनालयन कृषीर में सुरक्षित है, जिस राक्षसि टण्डनीजी ने बड़े व्यापक म मयाया था। वहीं से उनकी सक्रिय प्रतिक्रिया संपादन का सजती है। बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रथम वापिकोत्सव के सम्पादन चतुर्वेदीजी ही हुए थे इन नाते इसी सम्मेलन को ऐसे साहित्यिक यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए। कम-से-कम बिहार पर उनका जो प्रभुत्व है उससे इसी अनुष्ठान काय उद्धार हो सकता है।

उनकी मायद ही कोई रचना ऐसी हो जा पड़ते समय निर्विकार हास्य न उभरती हो। बाप 'भारत की वर्तमान दशा और 'स्वदेशी आन्दोलन' नामक उनकी पुस्तकें पढ़िए। उनमें भी हास्य के पुट मिलेंगे। व्यंग्य-विनोद उनके महज-अवभाव का मुख्य अंग था। बोकपाल में भी वह अपने की बाल कह जाते थे। भाषा-विवाद में भी वह बहुत साव-अमलकर पड़ते थे। अपने पक्ष की प्रीति का लिए पहले से ही पुष्टिकर प्रमाण संकलित कर रखते थे। उनकी दुनियाँ तकसगत होती थी। महाक-ममल होने पर भी वह हमेशा इस बात का न्याय रखत थे कि उनमें कटुता का ममदाय भी प्रवेश न हो। सामाज्य-विमलपण में भी वह साहित्यिक सौम्य ही प्रक्षिप्त करत थे। जैसे महादना मानवीयजी के पुन नाम का बलराम इस तरह किया था— 'मद न योः म' और साका मगबामदीन का 'साया नयबा न दीन'। उनके इस प्रकार के अर्थ विवचन पर ब लाम भी हमें विना न रहते थे त्रिनके नाम के दुन्दुभे में मनारंजक अर्थ निबाने जाने थे। इमोकिता उनकी अमरकारपुन अनियाँ साहित्य रम के विर-नर्ग से हृदयघाहिनी प्रतीत हुनी थी।

दिन गण के अनेक सारी मरणराशयानी का भी 'ममममभारतमित्र' कहकर उन्हें हँसा देने में ही उनको मृग मित्रता

था। किन्तु उनके द्वारा उत्पादित हास्य सर्वदा साहित्यिक मूल और उच्च परहित आत्मरक्षे ही संबन्धित होता था।

चतुर्वेदीय कसकता में रहकर चमड़े की बलाही करते थे। अपनी घोड़ागाड़ी (बागी) पर बेमर-मार्केट जाते थे। उस समय बूड़ीबार पाजामा अचयन और मोस पैस्ट कैंप उनका पहनावा था। असाहयोग आन्दोलन छिड़ा तो स्वदेशी बेघमूपा अपना ली। गाँधी-टोपी पर उनकी एक हास्य रसात्मक कविता साप्ताहिक 'मौमी (कसकता) में छपी थी जिसमें अन्याय टोपियों से उसकी झेपलता और पवित्रता बरसाई गई थी। मारवाड़ी-समाज में भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। वह बड़े बड़सों से मारवाड़ी भाषा भी बोलते थे। बंगला बोलने का अभ्यास भी मँज गया था। उन भाषाओं में भी वह सुझागुड का विचार किया करते थे। जो लोग उनके इस विचार से पूर्व-परिचित होते थे वे लोग उनके साथ बातचीत करते समय सावधान रहते थे। अब कौन ऐसा है जो भाषा के स्वरूप को निपारते रहने में प्रतिमान सजग होकर अनुरक्त रहेगा!

उनका महाभोगे इन्द्र का पीरबन शरीर सब तरह की पीसाकों में लुबकना था। उनके सौम्य रूप में उनके मन-प्रसाद से और भी मन्दता झलकती थी। ललाट का चन्द्र-विभक्त स्वच्छ सपन इन्तारबधी श्वेत मज्जापत्रित मनहर बागी मुपुट शरीर मादि उनके स्वस्व जीवन के रूप थे। कसकता-स्थित एक नाटक-मण्डली के रंगमंच पर वह हास्य रचन का अभिनय करने लगे तो विविध प्रकार की हँसी और हलाई के प्रदर्शन से बच्चों को कोट-पाट कर दिया। अग्निदेता के रूप में भी उनका रूप-सौन्दर्य दर्शनीय ही था। उनकी मंजुल मूर्ति आज भी जातों को रमाती-सी जान पड़ती है।

उनकी पुण्य स्मृतियों का पुञ्ज में से से कुछ बल हिन्दी-पाठकों को तबिनय समर्पित है।^१

१. ति.सं. : १ अगस्त १९९१।

प्रकाशक अगस्त १९९०—साप्ताहिक वाली (दीपक) (रि.प.६) बटवा।

कलकत्ता-प्रवास के संस्मरण

१

बिहार प्रयाग जी का एक सुन्दर मीन है—के कुछ दिन कितन सुन्दर थे !

यह पंक्ति याद आते ही मन अनापान बह उठता है—
'न हि मो विब्रमा गता' !

न अब के दिन बहुरे न के लाग ।

के दिन कुछ बहुत सप्ती के मही व पर धोरबाजारी और मज्जाबारी के भी नहीं थे । ईमान का बिमान आममान में नहीं उड़ा या घरली पर ही था ।

के लोग भी कुछ सज्जुगी नहीं थे पर आज-जैस पार कसजुगी भी नहीं थे । अपेक्षाकृत उनमें सहृदयता नहीं अधिक थी । पर जैसे ही के विचनमान और उगार के—छामकर बोनबाल और व्यवहार में जैसे ही कुछ लोग उनक जबाब भी थे—बाहर राम-राम भीतर मिट्ट काम ।

उन निर्मो भी और उन लोगों की तथा कुछ मित्रमाण्डियों के स्वार्थ की जब कभी स्मृति जाग उठती है बकि 'मायम' का यह मर्दाना महम मयन हा आता है—

जा घस कीन्हे बिहार मनकन
ता घन बांकी बटि पुम्पो करे ।
जा मन्ना मों करी बर बावन
ता मों बिबिन्न बरिन्न दुम्पा करे ।

‘मासम’ जोन से कुबन में
 करी केसि तहाँ अब सीस बुग्यो करे ।
 तँननि मे के सदा रहते
 तिनकी अब काज कहानी सुन्यो करे ॥

यूरोप का पहला महापुत्र समाप्त होने के दो-बाई साठ बार ही असहबोध की आँधी आई। आतंक के चप्पड़ का जवान उत्साह बूँसे से देने लगा। सन् २० की हलचल हरेक हृदय को झकझोरने लगी। देश की उमंग दैल बरबन भी बस बा !

मैं आरा के टाउन-स्कूल में हिन्दी-शिक्षक था। विद्यार्थन वैदिक के छात्रों में बड़ी जलबली थी। हर बड़ी हर तरफ से मुझ पढ़नेवाले गारे और भी सनतनी पैदा करते थे। विद्यार्थियों की निर्मयता और पुनिस की शौलकाहट देखने ही योग्य थी—आश्चर्य तो होता ही था हँसी भी आती थी।

मैं हाईस्कुल से असहयोग करके मेदानल स्कूल में चला गया। वहाँ अब तक राष्ट्रीय पाठ्य-पुस्तकें न मिली कॉलेज की तरह सिद्ध बनकर ही होने रहे। छात्रों में भी लेखनवाजी की लल पैरा हो गई। प्रति खिचार को बाँचों में जाने पर बहु बड़े जोशीले व्याख्यान दिया करते।

स्कूल के मेरे होमहार छात्रों में एक बुरहाउप्रसाद जातल भी थे। आये चलकर बहु हिन्दी के बड़े उत्साही लेखक हुए। आज जो बहु भीगे रहते तो नाटक और उपन्यास के धंध में उनकी कीर्तिसुता लहकहाती रहती। उनका पहला हास्वरलायक नाटक ‘बरकट सूय’ और पहला उपन्यास ‘दिल्ली एकमयेंत’ उन्हीं दिनों छप चुका था। उनको पढ़ाने के लिए जब मैं उनके घर जाना था तब स्कूल की पाठ्य-पुस्तकें जपय रगकर बहु केवल साहित्यिक पुस्तकें ही बड़ा करत थे। साथ ही आन आरबाड़ी-समाज को सुधारने की विम्ला और चर्चा भी प्रायः किया करने थे। उनक दो स्वराठीय बग्यु और भी थे—धी लवरपलास सुन्ययात्र और भी बुनप्रिमार पोहार जो ई-बर की बया में आज भी है। इन्ही तीन नाबियों में आरा नगर में ‘आरबाड़ी-मुबार-अमिति नायक मत्वा

कायम की। इसी संस्था का मासिक मुद्रणपत्र हुआ 'मारवाड़ी-मुबार' और मैं बना उसका सम्पादक—मया रमकट।

लेखक तो मैं सन् १९१० से ही बन गया था पर सन् १९०१ से सम्पादक भी बन गया। इन ग्यारह वर्षों के सत्य-जीवन में कैम-कसे दिन माये और कैम-कैम ताय मिले यह भी एक वृत्तची सम्झी कहानी है। किन्तु यहाँ केवल कलकत्ता-प्रवास की चर्चा ही अभीष्ट है।

नेपाल हस्त का आखिरी सलाम कर मैं कलकत्ता पहुँचा। उपपुस्तक की दुर्भाग्यपूर्ण पोहार वहाँ किसी व्यवसाय सम्बन्ध से हगिमान रोड के एक मकान में रखे थे। मैं उन्हीं के माय रखने गया। पंडित ईश्वरी प्रसादजी शर्मा ने पत्र के अपने क लिए एक प्रेस ठीक किया।

शामाजी मरे साहित्यिक दुःख थे। तात्कालिक कलकत्ता के मकानपठ हिन्दी प्रकाशक श्री रामलाल शर्मा के धर्मन प्रस में काम करते थे। किन्तु 'मारवाड़ी-मुबार' की छापी के लिए उन्होंने 'बालहृण प्रस' से मक-कुछ कहलें ही तय कर लिया था। उस प्रस के मासिक बाबू महादेवप्रसाद सेठ ने उन्हीं की मायत जाग-याचना हुई। नेत्रजी के साथी मुंशी नवजादिक साल भीबारातक से भी यही परिचय हो गया। प्रस का मकान (२१ शंकर घोष कन) बिद्यानाथ बौद्धेज के पिछवाड़े मुंशी जयह में था। नीच के हिल में प्रस था और ऊपर के ताल में रामहृण-मिशन के कुछ बर्मोशियों का निवास। उन्हीं संग्पानियों के साथ कबिबन 'निराला' भी रहा करने थे। मैं प्रस में रोड ही जाता था पर मठजी और मुंशीजी के निवा 'निराला' जी से परिचित न हुआ।

द्विन दिन मैं जन की पाठ्य-आमही का सम्पादन करने पहुँचे-यहल प्रेस में ले गया उन दिन सेन्धी और मुंशीजी ने बड़ उन्माहबदक बाकय कते। पहल तो उन लोगों की महमा चिम्बान ही न हुआ कि छरनवाली ग्पनाओं का संगोचन-सम्पादन स्वयं मैंने ही किया है। मनीजी तो बार बार उपर्यक्त उपायी बन नाम लेने लटे। शर्माजी का तो मैं बना ही था। उन्हीन करने काम द्विन मासिक 'वर्माणन के प्रकाशन-आन (बन् १९१०-१२) में भी मेरी माय बनी मेयाओं को बर्मीकर था। मरे

असर भी उनके असारों से मिलते-जुलते थे। सग्रेह के कारणों में एक यह भी था।

सेठजी ने प्रस में ही रहने के लिए अनुरोध किया। मुंशीजी ने कुछ साम-सौम भी दिलाया। पर मित्रवर पाहारजी के आग्रह के आगे मैरी एक न बसी। बिल्कुल सेठजी और मुंशीजी ने उन्हें राजी कर लिया। तब भी हरिसन राठ स प्रस चले जाने में लगभग तीन-चार महीने लग गए। प्रस न रहने लगने पर दोनों सज्जनों का बन्धुत्व दिन-दिन बढ़ने लगा। इसी बीच एक दिन श्री निरालाजी के बर्तन का सीमास्य प्राप्त हुआ।

मुंशीजी की विनोदप्रियता का उस सेठजी लुब संते थे। केदार महायान रसोहवा प्राय दोनों बूज सेठजी के लिए मंग का मोसा तैयार कर देने थे। रमोई में उनका हाथ बड़ा लागू था। मित्रांपुटी तो वे ही मंग बनाने में भी बहुत सभा हाथ था। जब पोला जमाकर सेठजी कुम्भी पर बैठ तम्बानु क कग लीचने लगते तब उनकी सम्भार मुद्रा दर्शनीय होती। बोलते बहुत कम और हसी की बात बर भी मुस्कराकर ही रह जाते। संज्ञित त्रिस दिन मंग के रूप में बोलने और हँसने लग जाने उस दिन सबमुख तरंग चाँद चुसनी।

श्री निरालाजी ऊपर के तस्ते से प्राय कम ही नीचे उतरते। अगर बाहर निकसते भी तो चुपचाप अपनी राह चले जाते दार-बाएँ देगने तक नहीं। मंग पैर, तलहूची पर गुरती मसलते हुए, दाम की मङ्क (कानवासित स्ट्रीट) तक निकल जाते। कभी-कभी जसी बसा में टन ठनिबा और मधुबा-बाजार तक बड जाने जान। बिम्बनपीलता की घाग में स्थन बड़े जा रहे हों। मीनाचतम्बन से गान्ठ मुयातृति कभी-कभी मन्त्रिजन में विकसित हो उठती। राण-भर मुगड़ा प्रमन्न दीगता फिर गम्भीर-बीर प्रदान।

जब मैं प्रस में नहीं रहता था तब भी निरालाजी पर निवाह पड़ी थी मगर अड़ी नहीं थी। मैरी मजावी बाने अनुमान करनी थी कोई टोन्ने-भुष्ने का आम्मी होगा। प्राय प्रस में जाने जाने रहने पर भी उनसे कभी साक्षात्कार का सीमास्य प्राप्त नहीं हुआ। एक ही बर

अनाशयक किमी के पास बैठकर मरगाप में ममय बिदाव नहीं ये दूर में भी सोड़ी ही बेर के लिए प्रम में जाता था—बहु भी ऐसे समय जब बन्ध-मौला मेठरी ही बचक रहन ब मुगीजी अपने काम पर चले जात थे—भूतनाथ-कार्यालय की बनिवरी बरन । यह कारखाना मसुजा बाजार में तेल-शाकुम-सेट का था । इसके मालिक थे पटना-मिटी के मेड सिगाठीलाल चौधरी । इनके कारखाने और परिवार में मुंवीबा की बड़ी मात्र और चार थी । इनके भर्तियों बाबू कनका प्रसाद चौधरी बड़े उदात्तपुत्र हिन्दी-धर्म थे । कनका बाबू का बिक्र बापे माएगा ।

जब मैं प्रम में रहने लगा सेठरी और भगीजी में मिरमाजी का हाथ मारूम हुआ । मुझे ऐसा मान हुआ कि अभी ये दोनों मजदूर भी उतन अभी प्रतिष्ठित नहीं हैं । बचकला में बहु कुछ ही दिन पहले बापे थे ।

पदकृष्ण-मिशन के एक विद्वान् संन्यासी स्वामी माधवानन्दजी एक ऐसे हिन्दी-बोधक की गोष्ठ में निकले थे जो बगला में हिन्दी में अच्छा अनुवाद कर सकता है संस्कृत और अंग्रेजी का अच्छा जानकार है और साहित्यिक मनोबुद्धि का भी हो । माधव हिन्दीजी में उन्हें मिरमाजी का पता मिला । माधवानन्दजी स्वयं कहा करत थे—“हिन्दीजी की गुण में यह अक्षुब्ध रूप हमारे हाथ रूप गया मधुपठ माधव का परना हुआ हीच है ।”

स्वामीजी बड़े भारर में मिरमाजी का नाम रखते थे । मिशन के अभी संन्यासी उनही मैत्र के लिए तनर रहने थे । उनकी स्वतन्त्रता में किमी प्रसार की बोर्ड बापा नहीं थी । बालन में संन्यासी विद्वान् ही साहित्यकार और समाज का उचित सम्मल करना जानते हैं । मिशन में संन्यासी मरा 'संविनी' कहकर उनकी प्रतिष्ठा करने और उनका रूप देगने रहने । स्वामी बीर-बराकजी का उन्हें 'हिन्दी का रबीन्द्र' बरने नहीं हिबतने थे । बीररुप संन्यासी होने पर भी एक बंगाली विद्वान् के मुख में ऐसी बात मुख मना आमान नहीं था । उन्हें बिक्रक और साजिद ता अभी बहने थे । उन लोगों की दृष्टि में उम समय

हिन्दी-संसार में उनकी उम्र का वृत्त कोई अनुभूत विद्वान् नहीं था। उन्हें पाकर वे लोभ गर्ब करगें थे।

सेठजी और मुंशीजी भी जब मुघलशाही संन्यासिनी से निरासाजी की प्रसंसा सुनकर ही उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। जिस दिन वृत्तसे संतरकर बाहर आते हुए निरासाजी को अपने कमरे में बुलाकर मुंशीजी ने मुझसे परिचय कराया उस दिन सेठजी ने जो भविष्यवाणी की थी वह हिन्दी-संसार में आज सत्य सिद्ध हो चुकी है उसे दुइराने की बकल नहीं है। सेठजी कुछ कम मुघलशाही में थे। प्रतिभा का बँसा जनन्य पुजारी होने लिये नहीं गयी थी। जिसकी कथा परलप लेंते उनके अग्रमकन बन गये। जागे चलकर इसके प्रभाव मिलने।

मुंशीजी तो महाकल्पसम्भ भाग्यी थे। बाउ-बाउ में उन्हें लकरीह मूलती थी। निरासाजी के सम्बन्ध में उनकी कितनी ही निरासी उक्तिवाँ बड़े मार्ग की होती थीं। प्रथम परिचय के दिन वह कहने लगे— 'एक तो महाकवि बिहारीदास की नायिका भौहां में हँसती थी बुरे हमारे निरासाजी भीहो में हँसा करते हैं बल्कि मह सा बिहारी की नायिका के भी काम बतार चुके हैं—इनकी कलमें हसती है बरीनिर्मा हँसती है भांग्य क कोए हँसते हैं। बकी इनकी गलें हँसती है।

अब मुंशीजी और सेठजी प्रायः निरासाजी के सत्संग का आनन्द उठे लगे। धीरे-धीरे उनका मौन भंग होने लगा। चर्चा केवल साहित्यिक ही होनी ली। सेठजी झेड़कर एमानुभव करन लपने मुंशीजी की सरस उक्तिवाँ उत्तरना भरती चलनी। उत आनवीन में निरासाजी के प्राप्ति कएँ विचारों का परिचय मिलने लगा।

सेठजी का आत्महृष्क-वैत आरतेन्दु-मुग के साहित्य-महाग्नी १० बाल-हृष्क बट्ट की स्मृति में स्थापित हुआ था। उनमें अधिकतर भूतनाय कार्यालय का ही काम हुआ करता था। मुंशीजी की निधना सेठजी के किय कल्पना ली। सेठजी अपनी अपना बड़ा माई मानने थे—उनकी बट्टेरी बातें चुपचाप बर्दाश कर लिया करते थे। चिन्तु ईश्वर की ऐसी दृष्टि कि वह भाईचारा जन्म तक निरत न सया। दमना रहस्य न गुने ता जच्छ।^१

^१ प्रथमतः। अर्, १९२०—वाक्यिक नर चरता' पटना।

२

बालकृष्ण प्रेम में सेठजी और मुंशीजी के पाम कुछ साहित्यिक मन्त्रण बगल माया करते थे किन्तु मुख्य य—वदित ईश्वरीप्रसाद वर्मा पंडित बन्धुधर पाठक पंडित रामदासिन्द बिबरी बेशन्तदास्त्री बाबू बन्धुधरप्रसाद धरे और बाबू कनकाप्रसाद चौधरी । चौधरीजी साहित्यसची महीध पर साहित्यापुराणी और बर्तनी बड़े पढ़े थे । इनका कहना था कि बंगला और हिन्दी का कार्य उमा पुराना था मया उपन्यास बयथा कहानी मंत्रण नहीं है बिबकी इन्होंने न पढ़ा है । इनकी कहानियों का एक मंत्रण मुंशीजी न प्रकाशित कराया था बिबका नाम इस समय पाद नहीं । उनही पाण्डुनिधि मुंशीजी ने सापी थी । बंगला और हिन्दी के कथा साहित्य को इनम ह्वारों मय बिके होंगे । ऐम यनी जात्र नी कुछ होंगे ही ।

धर्माजी बाबू रामदास वर्मा के यही पूरी स्वतन्त्रता के माध नीजगी करते थे । उनको बर्माजी नीकर नहीं साहित्यिक मित्र समझते थे अपन मने छोटे पार्स पुस्तकालय म भी बधिक व्याप करते थे । बीठा बन्धुधर व्यावसायिक गम्बाय में बही न रैना । धर्माजी परम स्वच्छन्द और स्वाभिमानी ध्यस्ति थे । उनका ईश्वरप्राप्ति निरुद्धता और बर्माजी का बड़ी मिदय मे उनको मकाना मने रैना था । बर्माजी बड़े हंसमुख मिमनमार और मिठबोपिया थे । साहित्यिकों को बड़ी बुर करते थे । बीना उनका मय मुन्दर का बीना ही ह्वय थी । उन मनय क कसकतिया पुस्तक-प्रकाशकों में उनके ममान साहवी और उदारबना इमय न था । उनक यहाँ धर्माजी के मित्रा बढि बानिधेयवरण मुनायाध्याय और पंडित मरी लम ध्याम भी साहित्य-रचना करत थे । उनु क्त विवेकीया और मुनी जी भी उनके लिय पुस्तकें लिना करत थे किन्तु ये बड़ी मजमत्र म प्राप्ति करते थे । पुस्तकों की दुख छादों और साहवी नीजगी मयाबट का उन्हें बड़ा नीट था । पुस्तका के बर्तमान मूद्धार में बाबू काट्टी पैम मय बन्द थे । बानिधिका को बुरमारा न बधिक मानी मूद्-मन्त्रु-मपु पाणा । ही मन्त्र दिया करते थे । ईम के लिय साहित्यिक का भगानुत्त होन रैना उन्हें ममय न था । विवेकी बने कुछ कन पड़े ही रें पर

तिरस्कार किसी का कभी न किया। त्रिबेदीजी से उन्होंने 'विष्णुपुराण' का गद्यानुवाद कराया। उसका पारिभाषिक मुद्रण विभासकरबादि में मय मय इस हज़ार रुपये उस समय सर्वा हुआ। ग्रन्थ पूरा छपकर संसार हो गया था। त्रिबेदीजी ने बहुत जिना तक चोर परिष्कार किया था। किन्तु वह ग्रन्थ अप्रकाशित ही रह गया। त्रिबेदीजी के अनवरत अनुशीलन और शर्माजी की इत्य-रामि से हिन्दी-साहित्य को जो काम पहुँचता उससे वह बंचित रह गया। वह हज़ारपन्ने की पौबी निवृत्ति चक्र में पिस गई।

शर्माजी की आदत थी कि प्रेस में पहुँचते ही मुगीजी और छेठजी से पान और रसपुस्के की उर्माइया कर देते थे। उनके आ जाने पर कोई काम नहीं किया जा सकता था काम करने ही न देते थे। ट्यून्ते ठो के कुछ ही देर, मगर उतने ही समय में कागज-कलम-बचाव किताब हमर उमर तक देने थे। कम गपमप और हँसी-टहाके के लिए ही वह आ जाते थे। उनकी मूरत देखते ही छेठजी हँसकर कहते— 'यस जब काम हो चुका!' मुगीजी से वह बराबर मुगमित्त तक और साबुन मुस्त बनूक किया करते। मगर मुप्रसिद्ध 'मूतनाच ठेक' की पीघियां लाली हो जाने पर लौटा देते थे। एक बार मुगीजी ने उनसे कहा कि हमार कारखाने में पीघियों की कमी नहीं है, इन्हें बेचकर वैसे क्यों नहीं उग्र लेते? इस पर उन्होंने टूटते ही कहा— 'मैं लेलिया बाह्यण नहीं हूँ!

छेठजी इतिहास के बड़े प्रेमी थे। इतिहास का जो कोई नया ग्रन्थ निमाह में आ जाता छोट पढ़ीर लेते। अंग्रेजी बुकसेन्सों के यहाँ उनका स्वाबी मार्केट पड़ा रहता था तथा इन्स बाजार में आते ही उन्हें लूचना मिल जाती थी। उनका इतिहास-सम्बन्धी ज्ञान भी बहुत गम्भीर था। उन्होंने एक इतिहास-ग्रन्थ लिखना शुरू किया था परन्तु दो-चार ही परिच्छेद छड़कर रह गए। प्रेस के काम में लटने शुरू थे मगर लिखने में आलसी थे। स्वाध्याय मात्र उनका ध्यमन था। इतिहास कर बातें करने लगते थे या बड़ा आनन्द भाता था। उनके निम्न अध्यायों को मैंने देखा था। स्वामी भवानी-पान मन्वामी से इतिहास अन्वीषा से अपनी निर्मा एक ऐतिहासिक पुस्तक कर देगने के लिए भेजी थी। यह मनु सलाखन के उदर कर थी। उसे अनेक प्रामाणिक प्रश्नों के आभाष पर उन्होंने लिखा था। उससे बड़े

मार्के के उद्धारण भी थे। मेठवी ने उसको देखकर कहा कि इसमें बहुत-सी अमंगलियाँ और अशुभ-बाते हैं। कई स्वप्न की वृत्तियों का उद्गार सुनार बना दिया। स्वामीजी जब एक गिट्ट-मण्डल में मारत भाये तब उन्होंने कम्कला पट्टे में मेठवी के मरणोपरान्त के लिए बड़ा आभार और उपकार माना।

गर्माजी और पाटकजी प्रायः मठवी से अग्रजी के इतिहास-सम्बन्ध पढ़ने के लिए ले जाते थे। पाटकजी ने चौगुनी अधिक पुस्तकें गर्माजी पढ़ जाने से। जैसे वह मिलने में तब से जैसे पढ़ने में थी। न जान कैसे कोई विचार देण-देवने पढ़कर समाप्त कर देते थे। उनके एक भाववादी मित्र बाबू महानेब्रमाण् मृतमृतुवाण् थे। इनकी पुस्तकें की एक दूरमा बड़म्मा मुहम्मद थे—भात पुस्तक बरदार। गर्माजी की रीत-बाजी मही भी हुआ करती थी। कलकत्ता में इनके कई साहित्यिक बरदार थे। उनके बूकान ग जी बह पढ़ने के लिए कई-कई पुस्तकें ले जाते थे। मृगीजी मन्दाक से उन्हें 'दीपकदाम' कहते थे क्योंकि वह चाह ता रात भर से बड़ी-से-बड़ी पुस्तक ले भी आ-आर ही जाते। उनका दिनाग विनकृष्ण परीक्षा या बाबर का, और लखनी भी उन्होंने गनेगनी की पार्थी। बेनीपुगीजी उन्हें 'मेरी कारेनी' का 'दिप्पा' उपन्यास अनुवाद करने के लिए ले जाए। पहले तो वह कुछ दिनों तक तबारे कराते रहे पर जब पुन मबार हूँ तो बन्द दिनों में ही अनुवाद समाप्त कर दिया। तारीक यह कि नारी से बही पर कम्बु नहीं। पवर उनकी पडाई और पाटकजी की पडाई में अन्तर था। यह किसे पकड़ ही से पाटकजी बड़े संघर्षी थे। वह नाम-नाम बकरियों को मोट करने जाते थे। इनकी एक मोटबुन मणीजी के पास मैंने देखी थी जिसमें उपन्यास किगने योग्य ऐतिहासिक पटनाओं के सुन्दर अंकन थे।

गर्माजी भी आग निबामी थे, पर पाटकजी बिहारगरीब (विना पटना) के भगता बरदार थे। यह नाम रोनी का हीना लगाने से और बन्दे-अन के बड़े मोवान् थे। सागन्ना पाय हूँद में इनका अन्त प्रवाण-अन्तिन था। मेरी लिखा 'दीप्पा' और 'अनुन की जीवनियाँ' इन्होंने अन्तिन ही दी। बरिन सन्तसन्त मट्ट और बरिन सगबराण

जाना पड़ा। किन्तु जंग की तरंग में नाट्य-शाला में ही ऐसी हुई। उमड़ी कि मुंशीजी उन्हें नये की बधा में अकेला न छोड़ सके प्रेस तक साथ बने। हँसी उमड़ी घरेजी को गरी-बेध में देखते ही। प्रीङ्गबस्था में पुष्प कण्ठ कर्कष हा ही जाता है। पुरुष अपनी उठती बबानी में ही स्त्री का पार्ट बज्जा कर सकता है। स्त्री का बेध रूपवान नवयुवक को ही फबता है। उपयुक्त केसाव की स्वर-माधुरी में रंगमात्र भी अस्वाभाविकता का आभास नहीं मिलता था। उन दिनों पारसी और बगला थियेटर्स में स्वयं सिखा ही अभिनेत्री होती थी इन्डियन लोगों के कान भी प्रीङ्ग कण्ठ का स्वर सुनने को अभ्यस्त नहीं थे। खरेजी मंच पर ज्या-ज्या बोलते सेठजी की हँसी का पारा बढ़ता जाता। मुंशीजी को आखिर काचार होकर उन्हें नाट्य-मन्दिर से बाहर ले जाकर प्रस वृत्तमाना पड़ा। घरेजी को बहु बात मामूम न होने पाई बल्कि दूसरे दिन प्रेस में उनके बाने पर सेठजी ने उनका अभिनय की बड़ी प्रशंसा की थिये सुनकर मुंशीजी की हँसी न रकी तो बहु अव्यय हट गए और मैं भी बहाने से टल गया।

हिन्दी के नाटकों की उब समय बड़ी भूम थी। लोगों में अहम्य उल्लाह था। अभिनय में काफ़ी मीढ़ होती थी। कितने ही नवयुवको को नाट्यकला-निपुण देखकर आसा की जाती थी कि हिन्दी का रंगमंच कुछ दिनों में बहुत उल्लत हो जाएगा। पारसी थियेटर्स में भी हिन्दी के सुन्दर नाटकों के अभिनय होने लगे थे। इसकी खर्चा जाये होयी। बड़ा बाजार में नाटकों से काफ़ी इन्कल रहती थी। एक बार हास्वरजाबतार पंडित जवलापप्रमाद चतुर्वेदी भी रंगमंच पर उठरे थे। उन्होंने रोने का पार्ट किया था। उनकी बाना प्रकार की स्लाई ने हँसाते-हँसाने लोगों को बे-रुम कर दिया। बल्किर निरासा जी को भी रंगमंच पर राज की बहा हुई थी पर उनको लोग रात्री न कर सक। बहु बहुत अच्छे अभिनेता हैं। सेठजी के कमरे में कई बार उन्होंने अभिनय की भावभंगी के गाय अपनी 'पंचवटी' बलिता मुनार्थ थी। बगला के अभिनय भी शिरलाए थे। उनकी धवप्रथिमा देव मुग्ध होकर एक दिन पाटात्री में बरा था—
'मापों के घाटीर की कलत्र का पौना बर्नन प्राचीन कम्बो में मिलता है
बैसा ही निरासाजी का लपड़ा और पुष्ट बदन है। इसी धाने और

अंगुलियाँ देखकर अन्नन्ता-गुहा व चित्र मार आ जाते हैं। जान पड़ता है कि अन्नन्ता की कोई प्रस्तर प्रतिमा मन्नाब हाकर हिन्दी-वसन्त में खली आई है। एतका मुल-बिबर और बिबुध टीक भायों के समान है। भाव प्राप्ति क बंगाल की तरह मेधा भी इन्होंने पाई है।^१ इमक कई साल बाद मैंने कलकत्ता में ही फिर निरामात्री को देखा। कबिबर रत्नाकरजी के मन्ना-पत्रित्व में अगिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन वही विरवविद्यालय के मिनेट-हॉल में हुआ था। उमके नामने बेसिंगटन पाठ में निरामात्री के पुर्त उताहरकर अपनी मांमरेणियाँ चितलाईं। उम समय उनका पटीर पहले से वही अधिब स्वत्व और मुडील था। काली-काली जूप्के भी थी। उनक बदन की रंगारी रंग पाठकजी की बायें एकएक भाग हा भाद।^१

३

कलकत्ता-प्रवास का मूल कारण था 'मारवाड़ी-मुषार' का सम्पादन और प्रकाशन। 'मठवाला'-सम्पादक बाबू महादेवप्रसाद सठ व बालकृष्ण प्रेम में 'मारवाड़ी-मुषार' को छपवाता था और कलकत्ता निवासी मारवाड़ी लसकों से संग-संग्रह भी करता था। श्री रंगप्रसाद भोदिका एम० ए थी लुन्नीयम मरावणी थी बसन्तहास मुषारवा थी रामदेव बालानी थी पद्मराज जैन थी रंगनाथ जाशोदिया थी दुर्गाप्रसाद रातान थी मानासाल काठ थी रामदुषार दापनवा थी धमबन्द सेमका थी ईश्वर राम बामान थी कालीप्रसाद घेठान थी बीजनाथ बेडिया थी दीनानाथ सिगनिया आदि उम समय मारवाड़ी-समाज क मुपरिचित सगव और मुषा एक छपा मावजनिक बायवर्ता थे। भातिवारी मरावणीत्री मुषारवात्री और योगानीत्री सामाजिक और मावजनिक हिम के कामों में बहुत भाग रहते थे। इनमें प्रमुख जगुबा थी पद्मराजजी जैन थे। वह बड़े भोदम्बी बनना थे। मात्र वह इम संसार में नहीं है। उन्होंने 'मारवाड़ी-मुषार' में मन्नाब-मुषार सम्बन्धी कई लेख लिखे थे। उरर्पक प्राय सभी मजबूतों

^१ इरगतान मूल १९१०—संस्कृत लिखता रहता।

के सेवक 'मारवाड़ी-मुपार' में छपे थे। श्री दुर्गाप्रसाद सेठान श्री काली प्रसाद सेठान और उनके सबसे बड़े भाई श्री देवीप्रसाद सेठान 'मारवाड़ी मुपार' के प्रमुख सहायकों में थे।

उन्हीं दिनों स्वनामधेय बेशमश्रुत सेठ जमुनादास बजाज की प्रेरणा और उदात्ता से अद्वितीय भारतीय मारवाड़ी अग्रपाल महासभा की स्थापना हुई थी। श्री पद्मराजजी रायबहादुर चोपानीजी सरनबपीजी मुखर्जीजी मोतिलालजी केडियाजी आलानजी और गैतान-बन्धु उसके प्रमुख स्तम्भ सचान्तक और उत्साही कार्यकर्ता थे। 'मारवाड़ी-मुपार' के सम्पादन के लिये उसके महाभिवेदनो म में भी आठा था। जब महासभा ने अपना स्वतन्त्र मासिक मुद्रण 'मारवाड़ी-अग्रपाल' प्रकाशित करने का निश्चय किया तब लगातार दो-दोई साल के प्रकाशन के बाद 'मारवाड़ी मुपार' बन्द कर देना पड़ा। 'मारवाड़ी-अग्रपाल' के सम्पादन हुए श्री हेमचन्द्रजी जोशी। जोशीजी से मैं उन्ही समय पहले-पहले परिचित हुआ। 'मारवाड़ी-अग्रपाल' भ कई लेख मेरे भी निकले।

'मारवाड़ी-मुपार' के लेखकों में श्री ईश्वरदासजी आलान बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर के निवासी हैं। उन दिनों वह हरिजन रोड और चित्तपुर रोड की चौमुहानी पर पुग-बटर म रहते थे। आजकल वह परिषदी बंगला अटोम्बली के स्पीकर हैं। द्वितीय-युग की 'सरस्वती' में भी उनका लेख छपा था। श्री कालीप्रसाद सेठान ईरिस्टर का लेख भी द्वितीयजी की 'सरस्वती' में छपा था। जब वह ईरिस्टरी पास कर स्वदेश लौटे थे तब आचार्य द्विवेदीजी ने अपनी 'सरस्वती' में उनका सविश्व परिचय भी प्रकाशित किया था। श्री रामधुमारजी माधवजी भी उन्हीं दिनों अमेरिका से लौटे थे। श्री माटीवाल काठ में पहले-पहले उनका मध्य परिचय करवाया। श्री बजरंग शर्मा द्विवेदी उस समय द्वितीय पुस्तक एजन्सी से सम्बन्ध थे। कुछ ही दिनों बाद द्वितीय पुस्तक एजन्सी से 'साहित्य' नामक मासिक पत्र निकला था। उससे सम्बन्ध था प उद्विनाप दीर्घक था आज बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति हैं। मुजफ्फर बाबू स्ट्रीट के पास सरकार मज में केडियाजी का बंगला प्रस था। उसने उन्हीं कुछ साल बाद 'विजय' नामक सविश्व साप्ताहिक निकाला था जिससे सम्बन्ध था श्री

कार्तिकेयचरण मुगगाध्याय का छपटा (बिहार) के निवासी थे और जब इन संसार में नहीं हैं। उसी बलिष्ठ प्रेम से दो-तीन साल बाद मेरे सम्पादकत्व में 'उपन्यास तरंग' नामक सचित्र मासिक-पत्र निकला था। मेरे सहकारी श्री रमेशचन्द्र बिपाठी का भी नाम उस पर छपता था। वह बड़े अच्छे होनहार मकसूबक थे और कानपुर की तरफ के रंगेबानी थे। जन्म में वह संन्यासी ही गए। बलिष्ठ प्रेम में ही लहरियाचरण (हरदोसा) के बालक का पहला संक छपा था। दूसरे संक में वह काशी के ज्ञानमण्डल प्रेम में छपने लगा। उसी के निरुत्थिले में मुझे कलकत्ता छोड़ जाना पड़ा। बालकला में मेरे रहने समय श्री गीतानाथ त्रिपाठी ने मेरे सम्पादकत्व में 'आर्य नामक सचित्र मासिक पत्र निकाला था। त्रिपाठीजी साहित्यानुष्ठीता थे पर उनके पास पैसे नहीं थी। बीज में आकर 'आर्य' निकाला पर लगभग एक साल ही बना सके। उन्होंने 'गोकुल' नामक हास्परम का एक साप्ताहिक-पत्र भी निकाला था जिसका प्रकाशन कुछ दिनों तक पटना सिटी में उन्हीं की देख-रेख में हुआ था।

'आर्यादी-मुबार' के बन्द होने पर बालकला प्रेम के मासिक महोत्सवप्रकार बैठ में मुझे अपने क्षेत्र में ही रहने का अनुरोध किया। उनका और मुझे नवजादिकलासत्री श्रीचाम्पक का आग्रह हुआ कि हास्परम का एक सुन्दर साप्ताहिक पत्र निकाला जाए। यह प्रस्ताव बंगला के एक हास्परकारक साप्ताहिक 'अवतार' ने मिली। मुन्नीजी बंगला के बलवार राज पाठ करते थे। 'अवतार' के संक भी प्रायः बराबर माने और पड़ मुनासे। उनके साहित्य-सम्पन्न-निर्माता में हम लोग प्रभावित हुए। इस निश्चय किया गया कि 'मनकाला' नामक साप्ताहिक पत्र अथवा ही निकाला जाए। पंडित दीनदीनशास्त्री गर्गा न इन बात पर बहुत जोर दिया।

यह बराबर हास्परम की लक्ष-पक्ष रचनाओं 'अवतार' का होने था। आरम्भ में निर्बंध हुआ कि मुगपूठ के लिए निगमात्री प्रति मन्दाह अपनी बलिष्ठ होने में अग्रजग (गंगा-शील) और बली चकरी' नामक गणक व निरुत्थिल विनाशपूर्ण विपणियों भी निरुत्थिल बलिष्ठ मन्नीजी

'मत्तबासा की बहक' नामक स्तम्भ के लिए अम्मारमक टिप्पणियाँ लिखा करेगे' समाकाशनाएँ भी निराशाही ही लिखेंगे। अन्य सारी सामग्री का सम्पादन और पुरे पत्र का प्रुष्ठ-सोचन मुक्त करना पड़ेगा। सम्पादक के रूप में सेठजी का नाम छपेगा। इसी निर्णय के अनुसार सन् १९२३ के सावन में 'मत्तबासा' निकला। मूँगीजी उस समय क प्रतिष्ठ मूठनाथ तेंस के कारखाने में मैनेजर थे। इसलिए 'मत्तबासा' क आखिरी पुरे पृष्ठ का निहापन तत्काल मिस गया। पहला अंक निकलत ही ऐसी भूम मची और इतनी माँस बढ़ी कि अधिक-से-अधिक संख्या में छापने से प्रेष असमय हो गया।

'मत्तबासा' का प्रचार दिन-दिन बढ़ता गया। प्रस की व्यवस्था स्वयं सेठजी करते थे और 'मत्तबासा' का प्रबन्ध-विभाष मूँगीजी के हाथ में था। जब 'मत्तबासा' का प्रबन्ध सम्बन्धी वाप बहुत बढ़ गया तब मूँगीजी 'मत्तबासा की बहक' लिखने के लिए समय नहीं निकाल पाते थे। विषय होकर उन्हें मूठनाथ कार्यालय की मैनेजरी भी छोड़नी पड़ी। तब भी उन्हें कुछ लिखने का अवकाश नहीं मिला पाता था। इन तरह 'बहक' का सोम भी धीरे ही कमर आ पड़ा। मूँगीजी कमी-कमी यथावकाश कुछ लिख दिया करते। बहू और सेठजी जब बहवार करने का अवसर पाते तब उसमें मित्रान लगाकर धीरे पाप उस पर टिप्पणी करने के सिद्ध भेज देते। 'मत्तबासा' कार्यालय की तीसरी संज्ञित एक छोटो-सा एकान्त कमरा था। राम में सेठजी अतमें नाचा करते थे और बिल भर में उनमें 'मत्तबासा' का मंदर तबार किया करता था। राम का रोड बनारसी फूटी बगती थी। अंध छावने के बाद कुछ पंटे इन कोना की सम्मिलित बैठक हाती थी। अतमें बहवार की सुबहों पर विचार-विनिमय होता था। राम नवान जब और माहिय में सम्बन्ध एगल बाछे महत्त्वपूर्ण समाचारों और सम्बन्ध राजनीति पर मूल-मूल भरी टिप्पणियाँ लिखने के लिए निरवक किया जाता था। अंध की तरंग में सेठजी की मूल-मूल बची विराली होती थी। मूँगीजी भी स्वाभाविक हास्य विचार लिखने में बड़े सिद्धाहन्त थे। विरालाजी की वचिनाओं में भी मत्तबासा की सम्मिल और लोकप्रियता बढ़ाई। उन्होंने मत्तबासा के अंधों

की जो समालोचना लगातार लिखी—'परगबमिहू बर्मा' के नाम से उसे पढ़कर आचार्य त्रिबेदीजी इतने दुःख हुए कि 'मनवाला' के एक बंध को मारि म मग्न तक बख्शी ठाड़ सगोपित करके भत्र दिया। उस समय त्रिबेदीजी नहीं बल्कि बकसीजी 'भरत्कवी' के सम्पादक थे। फिर भी 'भरत्कवी' पर त्रिबेदीजी की इतनी ममता थी कि वह 'सम्पादक' की समालोचना बर्नाम न कर सके।

'मनवाला' में छपने के लिए बहुत-से लोग हास्य-विनोदमयी रचनाएँ प्राप्त करा करत थे। उनमें से मार्के की रचनाएँ कृतकर में सुधार-संवार देता था। एसी रचनाओं के लिए 'रेगस्टों की फौज' नामक स्तम्भ बनाया गया था। राजनीतिक सामाजिक धार्मिक और साहित्यिक अंगों की जो हवाई खबरें और अफवाहें हाथी थीं उन्हें कलमबन्द करने के लिए 'अफवाहों की नय' नामक स्तम्भ कायम किया गया था। उनमें पाठकों का इतना अधिक मनोरंजन होता था कि देश के अनेक भागों से लोग अपने यहाँ की उड़ती खबरें और रिक्तस्थान अफवाहें लिख-लिखकर भेजा करते थे। 'रंगश्यों की फौज' में भी प्रति सप्ताह नये संलिष्टों का एक मुद्रण लगा। अपनी भेजी हुई खबरों और बुटकियों पर 'मनवाला' की रसवाजी देखकर लोग बड़े विनोदपूर्ण हँस से बसा-सा भजा करते थे। हिन्दी-सुधार के पक्ष-पाठकों में 'मनवाला' के एक नई उमंग की लहर पैदा कर दी थी। हास्यरस की और लोगों का मुकाब दिव-दिव होता जाता था। मनीषा यह हुआ कि पहले साल के अन्दर ही वह बस हजार की गणना में छपने लगा। केवल बनारस में ही छत्रेष्ट की मार्फत दो हजार प्रतियाँ अपनी थीं। कलकत्ता में उसकी इतनी बाक थी कि त्रिभू विषय पर वह लिखना शुरू करता था उस विषय के लक्ष में हृदयमय भत्र आता था। हिन्दू महासभा के विरुधी मताश्रयी मजदूरों का महाप्राण करने में उसने अपनी निर्भीकता से काम किया कि मजदूरों की भाइयों को धर्म-रक्षिणी ममा कायम करके 'मम-रक्षक' मासाहिक निवास्ता पड़ा। पारसी क्विटर कम्पनियों को भी उसने बहुत निरुत्त हाकर रगड़ा त्रिभू मार्के किन्न होकर 'मनवाला-मसख' में दर्जनों 'पाम' मुपुत्र जाने लगे। किन्तु हम लोगों ने कभी मुक्त्र ठमारा नहीं देना। बरुबर 'मनवाला' के पैरों

से देखा और मुँह छुटकर लिखा। फिर तो ऐसा तहलका मचा कि पारसी कम्पनी के नाटक-सेलक 'मत्तवाला-मण्डल' में स्वयं पधारकर पनाह माँगने लगे। यह कहानी अगले मंरा में आएगी।^१

8

'मत्तवाला' में पारसी थिएटरों पर जा आलोचनात्मक सेन और अग्रसेन निकलते थे तथा ब्याप्य-बिनोर छनते थे उनसे थिएटर के संभालकों और उनके सेलकों में बड़ी खलबली मची। थिएटरों के मालिक उस समय मदन थिएटर वाले थे। मस्क ड थिएटर हरिश्चन्द्र राव पर था और कौरिन्थियन थिएटर धर्मतस्मा के पास था। दोनों के तमाशो पर टीच और उइ टीका-टिप्पणी डेकर थिएटर कम्पनी वाले इतने बौलभाए कि 'पाठ' का लोम बिनाकर 'मत्तवाला' को लुभाने का प्रयत्न करने लगे। वे अपने नाटककारों को भी मत्तवाला-मण्डल में अजकार सिफारिश कराने लगे। मुँगीजी कुछ दूर तक चलने में आ गए थे। पर सेठजी सिद्धास के बड़े पक्के थे पास में न कँडे। उन दिनों मदन थिएटर कम्पनी के नाटक-सेलकों में ए० नाट्यप्रसाद 'बैठाव' बाबू हरिश्चन्द्र जीहर, ए० तुलसीदास र्गिवा' आना हूय साहब आदि बड़े प्रसिद्ध थे। इन लोगों से मुँगीजी की पुरानी जान-बहचान थी। 'बैठाव' जी का 'कृष्ण मुद्रामा' नाटक पारसी थिएटर के प्रमर्ष पर महीनों लगातार चला था। उसमें मगवानदास नामक एक सुन्दर पायक अभिनेता श्रीकृष्ण की भूमिका में उतरते थे और पुरणीतम नामक सुन्दर अभिनेता मुद्रामा का स्थाय चारन करते। बला के अभिनय बर जनता मृग्य थी। उस नाटक का अभिनय देखने के लिए मत्तवाला-मण्डल में हुन लोग कई बार गये थे। उसकी तारीफ भी 'मत्तवाला' में लिखी थी। बैठाव जी प्रायः मत्तवाला' की बीछार में बड़े रहे। उन्ही मत्तवाला-मण्डल में कई बार मुँगीजी के नाम देगा था। उन्हीने 'पराज बंज' नामक एक पुरतक लिखी थी

१. मद्रास : जून १९२२—मानिक 'मद पाता, बटला।

जो हिन्दी पुस्तक एग्जिस्टी (कमलकला) से निकली थी। उसमें अनुप्रास वाले शब्दों का जम्मा बड़ा था। वह बहुपुत्र विद्वान् और उर्दू के अच्छे धारक थे। हिन्दी में भी उनकी अनुप्रासमयी कविता बड़ी सरस होती थी। जता नहीं कि उनका 'कृष्ण-सुखामा' नाटक कहीं प्रकाशित हुआ या नहीं। अपने घर हिन्दी में वह एक अनूठी बीज होता। बायबीत में भी वह उर्दू के अच्छे-अच्छे खेर मुनाया करते थे। एक बार बोम्बिया रंग की पोशाक में उन्हें देखा तो वह एक छिद्र फकीर-से जान पड़े। माध्याह्निक बिपयों की चर्चा करते समय वह एक अच्छे फिलासफर जान पड़ते थे। वह जब कहा करते थे कि पिएट्रिकल कम्पनी की गौकरी सिर्फ़ रोटी के लिए करनी पड़ती है, नहीं तो स्टैज-रिहसल के समय कम्पनी की बेरया अभिनेत्रियों किसी भले घाबरी की इज्जत नहीं रहने देती क्योंकि कम्पनी के डाइरेक्टर उन्हीं सुन्दरियों के इशारे पर मीठ रचवाते और नाटक के इश्यों में हेर खेर करवाते हैं।

बाबू हरिकृष्ण 'बीहर्' हिन्दी के बहुत पुराने साहित्य-सेवी और बराबरी पत्रकार थे। 'हिन्दी बंगवासी' भादि कलकत्तिया जल्लवारों में उन्होंने यों काम किया था। वह भी कम्पनी की नीति से सहमत नहीं थे। उन्होंने मलबाका-जण्डक में यह ठाऊ स्वीकार किया था कि कम्पनी के नाटककारों को सुवचिपुन नाटक लिखने की स्वतन्त्रता नहीं है। उस समय कौरिन्थियन थिएटर में वास्टन मदन नामक एक गायक की बड़ी घूम थी। उसके पानों और शरणों पर जमता झूमने लपती थी। वह अच्छा अभिनेता तो न था पर नामक अच्छा था। उसके गाने थिएटरी ठाँव के होते थे जिनमें उसका मीठ गमा बाबू भर देता था इधीलिए वह कम्पनी के मामिकों का कृपा-पात्र था। 'बीहर्' की के समान सुप्रसिद्धिष्ठ साहित्य महारबी के बनावे हुए पीतों में भी वह स्वेच्छानुसार काट-काँट कराया करता था। 'बीहर्' की प्राम् मुधीजी से इस बात की चर्चा किया करते थे कि कम्पनी में जो कलितकण्ठ गायक और कोकिलकण्ठी सुन्दरियाँ हैं उन्हीं के इशारे पर नाटककार और गौकरी को चलाया पड़ता है। फिर भी 'बीहर्' की को बुझावे में रोखी की चिन्ता तो जो ही इसलिए एक दिन उन्होंने मुधीजी से कहा कि 'बईप्सी के बालम में जो मुधी रोटी और नमक

नसीब है वह भी जब 'मत्तबाला' को पसन्द नहीं है तब मैं अपनी कंपनी को 'मत्तबाला-मण्डल' में ही सम्पक रसना चाहता हूँ। इतना कहते-कहते उन बूढ़ बसिष्ठ की आँतें छलछल्ला उठीं। उसी समय मुखीजी ने उग्ह बचन दिया कि आज से कम्पनी के किसी भी नाटक के अभिनय पर एक पत्र भी न लिखने का 'मत्तबाला' हड़ संकल्प करता है। उसी दिन से 'मत्तबाला' ने पारसी सिण्टरी का पीछा छोड़ दिया। बहुत दिनों के बाद जब एक बार काशी में 'जौहर' जी से भेंट हुई, तो उन्होंने 'मत्तबाला' क उद्योग हुए उस नाटक विरोधी आन्दोलन पर बड़ा सन्तोष प्रकट किया। काशी में शहर से बाहर जगना एक अपना बगला था। उनके पंजे सिर पर गोल टोपी बहुत फरती थी। उनकी बोली में बड़ी मिठास थी। उन्होंने आजीवन हिन्दी की सेवा की थी। हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास में उनका गौरवमाली नाम अमर रहेगा।

पं० तुलसीदास 'सैदा' पंजाबी थे। वह हिन्दी के उतने वक्त्र आनकार नहीं जान पड़ते थे जितने उर्दू के। वह जब कभी 'मत्तबाला'-मण्डल में जाते अपनी उर्दू-सायरी लुब सुनाते। उनकी हिन्दी-कविता का छन्द-बन्ध ठीक नहीं जान पड़ता था। तभी उनकी तुलसीदास उर्दू-सायरी का पुट पाकर बड़ी मुहायरी हो जाती थी। वह बड़े मस्तमौला और हँसोड़ आदमी थे। अपने शीतों को गूढ़ पाकर बड़ा करने में बड़े बुझल थे। पुस्तक पाजामा कमीदार बदरला कस्मीरी टोपी आँतों में सुरमा काम में हथ का फड़ा जब में मोने की पड़ी और हाथ में आबनूसी छड़ी—उनका समोहर आता था। जब वह आते थे सफ़ेद मसली पान और आकरानी पत्ती अर्ध मुखीजी उनके सामने पैरा कर देने थे। उनका टहना भी बहुत बुझल होता था। वह भी कम्पनी की मीसरी में अपनी साधारण का हास ब्याज किया करता था। मगर 'बेनाब जी और 'जौहर' जी के समान उन्हें जगता की रबि और साहित्य की मर्यादा में भ्रष्ट होन की उतनी बिल्ला नहीं थी जितनी अपने ऐरा-आराम की चिन्मी की। इनके पर भी वह 'मत्तबाला' की कम्पनी विरोधी नीति से जायल था। लकिन कम्पनी के बापरे में अपनी मजबूरियों का बचन करत हुए वह 'मत्तबाला' से बराबर पनाह माँगा करने थे। कलकत्ता छोड़ने के बाद उनमें कभी भेंट नहीं हुई और न कहीं उनका

पता पाया। जागा हृद साहूब से तो एक बार कागो मे महाकवि 'प्रमाद' के मही भेंट हुई थी। वह उर्दू-फारसी के प्रकाण्ड पंडित और कवि थे। उनकी जवान से उर्दू मुतल में बड़ा मजा आता था। वह मङ्गील इन्ड और रोबीमे बेहर के लकड़ बादमी थे। वह भी हिन्दी में 'रीस' की की तरह अच्छी मुकदम्वी कर लेंते थे। पारसी-रंगमंच को उनके नाटकों ने काखी जीवन बान किया।

कलकत्ता के पारसी रंगमंच पर जो अभिनेत्रियाँ काम करती थी उनसे कही अन्धा बंगला-रंगमंच की अभिनेत्रियाँ कछा प्रदर्शन करती थी। यद्यपि उन दिनों हिन्दी और बंगला रंगमंचों पर कई बेस्पाएँ भी अभिनय करती थीं तथापि बंगाली अभिनेत्रियों में कई सचहमीय विशेषताएँ थीं। बकीप-रंगमंच की अभिनेत्रियों में कुत्रिम और मोहक भाव बगिमा नहीं होती थी। उनके स्वाभाविक अभिनय को देखकर यह कोई नहीं कह सकता था कि वे नाच-गान का पेशा करनेवाली बाबाक स्त्रियाँ हैं। वे पिण्टर कम्पनियों में नौकरों तो करती थी पर वे जिस नाटक की पानी होती थी उसकी मर्यादा का ध्यान रखती थी जिसमें यह मान होता था कि जनक मन में भी बंगला-साहित्य और बंगला-रंगमंच की प्रतिष्ठा का ध्यान बरकम है। किन्तु पारसी-रंगमंच की अभिनेत्रियाँ प्रायः दसकनुन्द पर अपनी मुन्बूटा और अंत-मंती की मोहिनी डालने में ही तत्पर बीबती थी। उस समय मुना जाता था कि धनी घरानों के बहुतेरे छाड़लें ली-जवान उनके सिंकार हो चुके हैं। बास्तव में नाटक का उद्देश्य तो मना-रंजन के साथ-साथ समाज का सुधार और जनता के भावों तथा बिचारों का उन्नत करना है। किन्तु नाटकामिनय का पेशा करनेवाली कम्पनिया ने नाटक के मुख्य उद्देश्य का निन्दुरतापूर्वक हलन कर डाला है। उस युग में पारसी कम्पनियों ने नाटक-प्रदर्शन द्वारा समाज को पब भ्रष्ट किया और आज के युग में वही काम सिनेमा कम्पनियों कर रही हैं। यह सर्वनाशी समाधा चुली भाँजों हमारो अपनी सरकार नी बेलती है और हमारो देश की नेत-मन्बली भी। किन्तु आज भी हिन्दी-कम्पनियों से बंगला और मराठी की कम्पनियाँ कही मन्बली है।

उस समय कलकत्ता में दो सार्वजनिक नाट्य-समितियाँ और नाट्य

परिषदों की वे भी पारसी रंगमंच के प्रभाव से बच नहीं सकी थीं। किन्तु बाबू रामलाल बसन की हिन्दी-नाट्य-समिति और पं. रामचंद्र शुक्ल के हिन्दी-नाट्य-परिषद् के जो अभिनय होते थे उन पर साहित्यिक छाप काफ़ी रहती थी। इन दोनों सार्वजनिक नाटक-संस्थानों में प्रतिप्रतिष्ठा रहती थी। और वे ऐसी कष्टा करती थी कि इनके अभिनय पर काफ़ी साहित्यिक रंग बढ़ा बीज पड़े। हिन्दी-नाट्य-परिषद् का कार्यालय उस समय सिम्बूरिया पट्टी के मुककड़ पर था और हिन्दी-नाट्य-समिति कार्यालय अफ़्जलपुर रोड में बाबू रामलाल बसन के कार्यालय के समीप ही था। उसी में मुंजी मृकुमाच लाल सगीताचार्य रहते थे। वह गाजीपुर डिब्बे के निवासी थे। उनके पास मीने सगीताचार्य का एक हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थ देखा था। उसमें गीतों की स्वरलिपियाँ भी दी गई थीं। मुंजीजी इन विद्यालय ग्रन्थ को छपवाना चाहते थे पर उनकी अभिलाषा पूरी नहीं हुई। अब उस ग्रन्थ का पता नहीं। यदि वह प्रकाशित हो पसता तो निश्चय ही हिन्दी में संगीत-विद्या का एक अनूपम ग्रन्थ होता। मुंजीजी बहुत बूढ़ थे इसलिए बुढ़ापेसा की कामना के साथ उस ग्रन्थ का भी लोच हा गया। बाबू रामलाल बसन भी उन ग्रन्थ के प्रकाशन की बात सोचते-सोचते बल बसे। उनकी इच्छा कल्पना में एक हिन्दी रंगमंच स्थापित करने की भी थी। एक बार पं० जगन्नाथप्रसाद अनुबेदी के घर पं० अत्रोत्तर पाठक के उद्योग से कुछ नाटक-प्रमी साहित्यिकों का बहोर हुआ था। उसमें बर्माजी और शुक्लजी भी थे। उन्हीं दिनों अनुबेदीजी का 'बनुर मुसली' नामक नाटक और पं० ईशवीप्रसाद बर्मा का 'बुरेनी दुनिया' नामक नाटक प्रकाशित हुआ था। वे साथ हिन्दी रंग मंच की स्थापना के लिए कुछ दिन बहुत कार्य-उत्तर रहे। किन्तु वे सब के-सब कुछ ही दिनों के बाद हम नगर को छोड़ गए, और हिन्दी रंग मंच की स्थापना का उद्योग वहीं-वा-वही रह गया।^१

१ प्रकाशन मुम्बई १९२०—बामिद अर बादा, बरना।

पूज्य निरालाजी

दिवेकानन्द-सोसाइटी (कलकत्ता) से जब हिन्दी मासिक 'समन्वय' निकलने का निश्चय हुआ तब उसके योग्य एक सम्पादक की खोज में सोसाइटी के विद्वान् संन्यासी स्वामी माधवानन्द एम० ए० सीधे बाबायं द्विवेदीजीके पास पहुँचे। द्विवेदी ने ही निरालाजी को चुनकर सोसाइटी में भेजा।

कहते हैं महात्मा गांधी ने मेहक-सा मगीना चुना था। महापुरुष सबकुछ अपने पारखी होते हैं। द्विवेदीजी ने निराला-सा मगीना परखा। प्रतिभा की जो परख उम्होंने की उसका लोहा कौन न मानेगा। निरालाजी को पाकर सोसाइटी चम्प हुई। स्वामी माधवानन्दजी के सामने ज्यों-ज्यों निरालाजी का बौद्ध बुलगा गया त्यों-त्यों वह द्विवेदीजी की धीपी हुई जाती को जनमोल रतन की तरह पुगाने लगे।

मतवाला-मन्थक क मकान में ही उक्त सोसाइटी भी थी मैंने स्वयं देखा था कि स्वामीजी बचकर निरालाजी की सेवा और मुख-शुद्धि का ध्यान रखते थे। यहाँ तक कि वह सदा निरालाजी का मुँह जोहते रहते थे। निरालाजी का पीक-सौजन्य ही ऐसा था कि एक बार जिसने उस पारख को परखा वह सोना हाँकर रहा। 'मतवाला'-सम्पादक भी महापुरुष प्रसाद सेठ का जब सम्पर्क हुआ तब वह निरालाजी के हाथों बिक-से गए। उनके समय निराला-भक्त बाब तक कोई हुआ ही नहीं। यदि वह जीवित रहते तो निरालाजी को कभी कोई विक्षिप्त नहीं कहने पटा।

सोसाइटी के मुख्य संन्यासी लोग भी निरालाजी का बड़ा सम्मान करते थे। वे सभी जगतली से और बमला माया तो निरालाजी क ठिए

मातृभाषा के समान ही थी। उन विद्वान् सम्पादकों के साथ बाल्वैदिक वादवीर में निरालाभी ही बीस पड़ते थे। बगला-साहित्य-सम्बन्धी संताप में भी निरालाभी ही बज्रनदार निकलते थे। स्वामी श्रीरेखरानन्दजी ने एक बार उनकी बिलसण तर्कशक्ति पर विस्मित होकर कहा था 'एगन की मानबेर भेषा ?'

'मत्तबाला'-सम्पादक सटजी कभी-कभी कोई बात खेड़कर बहाना का मजा करने के लिए मुंशी नवाजादिकलाक भीबास्तब और निरालाभी को मिड़ा देते थे। मुंशीजी तो सचमुच मुंशी थे मगर निरालाभी की मरम्बनी जब मुखर होती थी तब उस विवाद का हम्म देखने योग्य होता था। निरालाभी को मुंशीजी भी इसीलिए उतचित करते जाते थे कि अधिक-स-अधिक उनकी नाभिरामता का जानन्द लिया जा सके। निरालाभी की ताकिकता की तापीष्ठ यह थी कि उसमें कहीं से असंयम नहीं भा पाता था। उनकी स्मृति शक्ति और बुद्धिबुक्त बल का कायल होता ही पड़ता था।

'मत्तबाला' में निरालाभी की कविता तो बराबर छपनी ही थी ममासोषता भी बही मिलते थे पर उमम अपना नाम देने थे—मरजम सिंह घर्मा। उन्हीं 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं पर कुछ अर्थों में मगाठार लिखा। उस समय भी भारतीय बङ्गीजी ही सम्पादक थे। आचार्य द्विवेदी की इतनी अधिक ममता सरस्वती पर थी कि उन्हीं रोषबज 'मत्तबाला' के एक अंश का विपिबन् सम्पादन करने शक से भेज दिया। द्विवेदीजी ने उक्त अंक को आसोपान्त रस डाला था। उस पाकर निरालाभी इनना अधिक हँसे कि उतनी बेर तक उन्हें अविश्रम हँसते मते कभी नहीं देखा। उस समय उनकी बँसबाड़ी बोली में द्विवेदीजी की स्मृति मुनन पाय्य थी।

निरालाभी कुछ दिन काशी में रहे थे। मैं भी उन दिनों बही था। 'प्रसाह'जी के नाम गृह बटव होनी थी। मध्य रंग में बजड़े पर कविता पाठ भी हुआ था। निरालाभी ने हारमोनियम बजाकर भी रामबन्द वृणाल मनु मन पद गाया था। 'प्रसाह'जी ने पगोरा में उनकी बड़ी प्रशंसा की थी। सांगिय और संगीत दोनों वास्त्रां में उनकी मगापाय्य बनि

देकर प्रसाद' की बहुत प्रशान्ति हुए थे। 'प्रसाद' की राग उपरहित व्यक्ति थे। उन्होंने उन्नी समय निराशात्री को कई बार तौलकर कहा था कि हिन्दी को ईरान की देन है निराशा। यह भविष्यवाणी मात्र प्रत्यक्ष है।

'पञ्चमटी' कविता का पाठ करने समय निराशात्री की भावभंगी देवकर मुंशीजी का शरीर रंगमंच के दृशक अभिनेताओं की भंगिमा याद हो जाती थी। निराशात्री की नाट्यरचना भी जिवन कमी रमी है उसकी भाँजा में मात्र भी उनका कीमत् कोषता हुआ।

सर्वप्रथम भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का महाविशेषण करकला विरविधात्म के सिनेट-हॉल में हुआ था। कविदा रस्तादारी अध्यक्ष थे। हॉल से बाहर निकलकर निराशात्री सामने के पार्क (वेस्टिंगन स्क्वायर) में अड़े हुए पड़े। सुरक्षा उधार किया। सती तानकर मुजाबों की माँकेधियों का प्रसारने और लोचन लगे। सिर पर बुद्धों धूम गई। चारों ओर से तमाशा देखनेवाले आ जुटे। अन्ति और मोक्ष्य का वह पूर्व वह निराशा बस निराशा ही था। रामस्वामी चित्रकार पं० मोठी नाम शर्मा की चित्रावली कलकत्ता में प्रकाशित हुई। उसका चित्रों के नीचे निराशात्री से अत्रमाया में परिवर्तारमक कविताएँ लिखीं। उन्हें पढ़कर कालपी-निवासी श्रीहरणबख्शेन शर्मा अस्तिष्ठ होकर मुंशीजी से काशी केर तक तापीय करत रहे। शर्माजी महाकवि कलावत्स के विषय बह मान आते थे। 'विद्याल भाष्ट' वाले अत्रमोहन शर्मा के वह भाषा थे। मात्र निराशात्री का शक्तिव शरीर नहीं रहा पर उनका यथा-तपीर उनकी कृतियों के रूप में विरकात तक विद्यमान रहा।^१

^१ लेखक १० अक्टूबर १९११।

प्रकाशक २० अक्टूबर १९११—द्वैतक नाम शरणावली।

मुंबई की पटना सिटी के सेठ किशोरीलाल चौधरी के साबुन-उत्स-फुल्लेस के कारखाने के मैनेजर के और सेठजी के पुण्डे मित्र भी । एक बार निराला उनके कारखाने में गये तो मुंबईजी ने उन्हें वहीं की वहीं चीर्से प्रेमोपहार-स्वरूप दी । किन्तु 'मत्तबाला'-सम्बन्ध में पहुँचते-पहुँचते सुगमिष्ठ मूतनाब ठेक की एक सीधी ही बच पाई । सामुन की ठिकियाँ भिलमर्कों के गन्ध कपड़े साफ करने के लिए रास्ते में ही बँट गई । उन्हें भिलमर्गि पहुँचाने गए थे । वह भी उन्हें रँले-कुर्से कपड़े पहने देखकर उनके पास टिठककर पूछने लगे कि तुम साबुन के रूँ तो अपने कपड़े तो खूब साफ कर लेगा । मत्ता अयाचित भन किस अमाय की न सुहावा । कई जोड़े हाव निराला के आने फँस गए और दनादन सब पर एक-एक टिकिया बू पड़ी । इतना ही नहीं मसालेदार ठेक की बोतल भी घुसकर एक-एक की चाँद पर बरसने लगी । सुगमिष्ठ ठेक की पीसी मेरी जेब में उनकी आँखों से बोसक न होती तो वह भी पुष्प सूटकर रूँती । तारीख यह कि ठेक बालकर वह सुन्दर बोतल भी एक के हवाले कर दी । इतने में तिसकुट बेचनेवाला अपना घौमचा लिय उभर ही आ निकला और निराला ने अपनी देब के सब पैसों से तिल की मीठी टिकड़ियाँ खरीद कर उन सुन्दरों में बिखेरना शुरू कर दिया । मत्ता यह कि सब कुछ जाने पर उन बेचारी की गिड़गिड़ाहट सुनकर यह बाद भी कर दिया कि जब दूसरे किसी दिन फिर आकर तुम जोयों को प्याजी पकीड़ियाँ पिलाऊँगा तिसे सुनते ही सब-के-सब एक स्वर से उन्हें बसीलने लगे ।

निराला की ये कहानियाँ आज के पुग में उपम्याम की मनमदन्त बातें समझी जाएँ मने ही पर आज जो निराला की पूजा-प्रतिष्ठा हो रही है उससे इनकी सामना स्वतः सिद्ध हो रही है । पुष्प-बस क बिना कौति प्रसार कहापि नहीं होता । निरगूह त्याग स बड़कर कोई पुष्प भी नहीं । म्यास-बेचनानुसार 'परोपकाराय पुष्याय' तभी मनुष्य कर पाता है जब उसकी प्रवृत्ति में त्याग-वृत्ति की प्रमाणता रूँनी है । निराला अपने त्याग का प्रदर्शन नहीं करते थे । कभी किसी से उसकी बर्बाद तक न करते थे । यह तो उनकी महज प्रवृत्ति का मूलाधार था । कोई उनके सामने इन पुग की प्रार्थना भी बलाता था ता वह मौन ही रूँने थे । वह

आत्मरक्षावा सुनने के अन्वयासी न थे। कभी-कभी तो कहीं ऐसा प्रसंग छिड़ने पर वहाँ से उठकर बहुत बड़े बातें थे। मैंने तो यहाँ उनके बहुत छोटे-मोटे त्पामों का प्रत्येक किया है उनकी समता की सीमा से बाहर के बड़े-बड़े त्पामों के भी प्रसंग हैं। जिससे उनका साथ जीवन ही व्यत्यय है। पर मेरे विचार से मानव की मनुष्यता को परखने में उसके प्रतिदिन के जीवन की छोटी-से-छोटी बातें विषय सहायक होती हैं। 'मनवासा' के प्रेस का मशीनमैन अचानक बहुत भावुक हो गया। ट्रेडिंक में उसका समुदाय भाषा हुआ ही पिस गया। वह एरीब मुकामना था। सेठजी ने वो कम्पोजिटर्स के साथ उसे अस्पताल भेजा और एक का अलग उसके घर भेजा कि परिवारवालों को अस्पताल में छोड़ पढ़ना चाहिए। साथ मना करने पर भी निराशा उस कम्पोजिटर के साथ उसके घर गये केवल इतीकिए कि उसके घर की एरीबी अपनी भाँखों देख भाएँ। अब तक वह अस्पताल में रहा निराशा उसे फूलकटप स गुणदस्ता खरीदकर दे जाते थे और बीड़ी के बरखे छिपरेट में। उसके घरवालों को सेठजी से अतिरिक्त सहायता और देखरी की रकम भी दिकवाई। उस आदमी ने लौटकर बतकामा कि भाव निराशाही उसके बड़े बाप और बीबी-बन्धा के लिए अन्न-अन्न की मासिक व्यवस्था भी कर भाए थे। इस तरह के अत्यन्त छोटे-बड़े परोपकार उन्हींके किए थे जिनकी आयरी किसी जा सकती है। कितने ही ऐसे काम तो किसी को यादूम भी न हो पाए हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सहर त्पाम-माकना के बिना परोपकार हो नहीं सकता। सर्वोपरि बात यह कि उनके परोपकार-कर्म साम्बिक होते थे क्योंकि सदा निष्काम भाव से किए जाते थे।

निराशा का अपन बीते-बी टीक-टीक परखे ही नहीं भए। उनकी बीमबन्धुता को निगाही दुनिया ने बिलिखता की संज्ञा दे डाली। उनका व्याप भी स्वार्थी समाज में उनका पापकर्म ही समझा गया। पर कठोर सरब तो यह है कि निराशा ने संघार या समाज की कुरता पर कमी काव ही न किए। सावन्नीबन बीछरण की तरह रहे। शूनी भी हुए तो पर शिवाभ ही। बड़े-समझे भी तो व्याप क पस पर अडिग रहकर। अपनी पीर मोई और पराई पीर सँबोई। स्वानिमान के सर्वोच्च सिख्य एए

बैठे रहकर फकीरी-बेक्री से संसार की ओर ज्येसा-भरी कनसियों से देखा । स्वयं हुआहक के बूट पीकर बूसरों को समृद्ध ही पिनाले रह गए । समाज में त्यागी और साहित्य में बाणी इस भूप में बूसर्य ऐसा हुआ ही कौन ?^१

आदर्श महापुरुष महाकवि 'निराला'

पुण्य आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का सम्पादन-कार ग्रहण करते ही 'सरस्वती' में बाबू इयामसुन्दर दास का चित्र प्रकाशित करके उसके नीचे जो पद्यात्मक परिचय लिखा था वह हिन्दी-संसार में प्रसिद्ध है । उसकी एक पंक्ति है :

“सौम्य शीतलितान बाबू इयामसुन्दर दास ।”

'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ' की सेवा में रहते समय लगभग दो वर्ष मुझे बाबू साहब को बहुत निकट से देखने का अवसर मिला था । उस समय भी आचार्य द्विवेदी की यह पंक्ति मेरे ध्यान में ही थी । उनके सम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त होने पर मैंने इस पंक्ति के सहारे उनका अध्ययन भी किया । बाबू साहब के प्रति हार्दिक भ्रष्टा रचते हुए मैं बड़ी नम्रता के साथ यह कहना चाहता हूँ कि यह पंक्ति विरामाजी पर अधिक सटीक बैठती है ।

बाबू साहब से निरामाजी की तुलना अभिप्रेत नहीं है । बाबू साहब अतिथय महान् साहित्य-महारथी थे । साहित्य-संसार में वह स्वयं एक महनी संस्था थे । उनका शुभ नाम काशी नायरी प्रचारिणी सभा का पर्यायवाची बन गया था । उनकी तुलना किसी साहित्यकार से नहीं हो सकती । किन्तु उनके नाम के साथ जो विशेषण द्विवेदीजी ने लगा दिया था उसको उनके न रखने पर निराला ने ही साबक और सनाप किया ।

१ मेगम : १ जनवरी, १९५१ ।

प्रकाशन : ११ जनवरी, १९५१— साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' (निष्पन्न-वृत्ति कट्ट), नई दिल्ली ।

निराशाजी आचार्य द्विवेदी के कृपापात्र ही नहीं स्नेह-भाजन भी थे। सबसे पहले द्विवेदीजी ने ही उनकी मेधाचिन्त को परखा। द्विवेदीजी के हासिक आशीर्वाद के साथ ही वह हिन्दी के 'साहित्य-लोभ' में मगतीन हुए थे। इस बात को वह स्वयं मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते थे।

जब वह 'मठबासा' में 'गरबर्नासिंह बर्मा' के कल्पित नाम से अन्य पत्र-पत्रिकाओं के साथ 'सरस्वती' की भी आलोचना करते थे तब द्विवेदीजी को इसका पता न था कि निराशा ही आलोचना ठिक्का करते हैं। 'सरस्वती' की आलोचना जब उन्हें बसझ हो उठी तब बितने बर्कों में आलोचना छपी थी सबको आश्रय संशोचित करके भेज दिया और लिखा कि दूसरे का सिद्धान्त्येवम करने से पहले अपनी ओर देख लेना चाहिए। द्विवेदीजी ने बौद्ध से ही सब बर्कों को आपत्त-मस्तक काट छाँटकर रबिस्ट्री से भेजा था। निराशाजी उस समय बहुत देर तक हँसते-हँसते मक गए और उस दिन से आलोचना के लिए कभी 'सरस्वती' को हाथ में न लिया। उनका बावजू या कि आचार्य की लेखनी से छोड़े गए पृष्ठ प्रकाशित कर दिए जाएँ, पर 'मठबासा'-सम्पादक ने उन पृष्ठों को तिबोरी में सदा के लिए रूँद कर दिया। यदि वे पृष्ठ बाब मिल सकते तो अनमोल समझे जाते।

निराशा अपने मुकदमों के प्रति जैसे धिए वे जैसे ही स्वानिमानी और त्वापी भी थे। जिस प्रकार वह स्वयं किसी व्यापरीय व्यक्ति का सम्मान करते थे उसी प्रकार वह उस व्यक्ति से भी सम्मान पाना चाहते थे। एक बार वह एक साहित्यिक सभा (कलकत्ता) में गए तो उसके समापति ने उठकर उनका स्वागत नहीं किया। मंच पर चढ़े तो गए, पर अज-अर अड़े ही रहकर नीचे उतर आए। तब भी समापति ने उन्हें नहीं रोका-टोका। 'मठबासा'-सम्पादक उनका पत्र समझ उनके पीछे छन गए। किन्तु निराशाजी बाहर जाते ही टैक्सी पर आये निकल गये।

यही एक कवि-सम्प्रेसन में कवियों की जो नामावली मुनाई गई उसके अन्त में उनका नाम था ताकि भोवा अन्त तक बटे रहें। परन्तु नामावली के आरम्भ में ही अपना नाम न मुनकर वह उठकर चक पड़े।

हम साधियों में रोकना चाहा तो कहने लगे कि मैं रुकित्तु चाहे अन्त में ही पड़ता पर मामाबकी मैं सबसे नीचे मेरा नाम क्यों रिया गया और मुझसे पूछा भी न गया ।

बाबिर बसे ही गए । उनका स्वाभिमान बड़ा दुष्कार चाहता था । उसका भाव उठाना उसके बय का न था ।

एक वर्ष में नवम्बर (१९६०) में उन्हें देखने प्रयास गया था तो २४ नवम्बर को त्रिनेत्री-स्नान के समय देखा कि एक बमबमाठी 'बस' पर बम्बई से प्रसिद्ध अभिनेता श्री राजकपुर और कुछ चलचित्र-तारि कारें आई थीं । हजारों दर्शकों की अपार भीड़ थी । 'गंगा-जमुना' के देव का चित्र बनने वाला था । मैंने निराशाही के पास जाकर उस हृदय का दर्शन किया । मुनकर कहने लगे कि राजकपुर के पिता पृथ्वीराजजी जब कभी प्रयाग आये तब मेरे पास अवश्य ही आये पर राजकपुर अब तक नहीं आया । ऐसा उनका मित्राव धुक् से था ।

'मत्तबाला'-मण्डल के मुंशी नववादिकलाक भीवास्तव के साथ वह एक दिन पंडित नारायणप्रसाद 'बैताब' से मिलने गये । बैताबजी नामी नाटककार थे । उन्होंने अपने निवास-स्थान पर एक नाट्य-भोष्ठी का आयोजन किया । उसमें निराशाही को भी आमन्त्रित किया । पर हम लोगों के बहुत आपस पर भी बह नहीं गये । बाले कि मैं पहले-पहल उनके घर जाकर उनसे मिलना और आज तक वह मुझसे मिलने मेरे पाम नहीं आय । यदि उन्हें अक्षराज नहीं तो आज मुझे भी नहीं है । ऐसे अर्धस्य प्रसंग हैं जो उनके आत्मभिमान के नीरव-धितर को दूर से ही इंगित करते हैं ।

उनके त्याग की कहानियाँ वा अनन्त हैं । उसकी बापटी सिद्धी जा सकती है । 'मत्तबाला' प्रति परिवार को त्रिफलता था । उस दिन प्रातः काल ही कई बघासी मुबक म्नाटक अपनी सामन्तित संकर पहूँन जाते थे । वे प्रति सप्ताह अठार बार बेचकर अपना कमीशन ले लेते थे । 'मत्तबाला' की काजी धूम और धाक थी । प्रसिद्ध छात्रों को उनकी बित्री में पर्याप्त महायज्ञ मिल जाती थी । एक दिन एक अत्यन्त हीन-मर्जीन छात्र ने निराशाही हालबाल पूछन लगे । उसने बतलाया कि भाड़े की

साहित्यिक पर अक्षरवार बेवता हूँ। उसे फल-हाल देखे ऐसे इकित हुए कि वह सी अपने की नई साहित्यिक तो सपीय ही थी, उसके लिए इच्छा नूट भी बनना दिया और कहा कि स्वाभकम्पन का सहाय मत छोड़ो तथा पुस्तकें खरीदने के लिए पैसे मुझसे कंठे चामो। 'मठवासा'-सम्पादन को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने निराशाधी से पूछा कि दो-चारों को अपने इस समय कहाँ से आपको मिल गए। निराशाधी ने हँसकर टास दिया। फिर पता चला कि उन्होंने धी मन्हाबैवप्रसाद मुनमुनवाला (पुस्तक प्रकाशक बड़तला) से एक पुस्तक लिखने का बचन देकर पेशगी छुप लिया है।

'मठवासा' कार्यालय का दरवाना पोरतपुर-वासी की मोर का रहने वाला एक बड़ा खूबसूरत लीनवान था। वह निराशाधी को 'मुहनी' कहा करता था। उसकी छापी टीक हुई तो उसने उनसे निवेदन किया कि मेरी छपल में अबस्य बकिए। किन्तु उसकी छापी के देन मोके पर निराशाधी का सतीजा जिसे वह 'बड़कीना' कहा करते थे बीमार हो गया। तब भी उन्होंने ऐसमी सारी मजबूती नुतीं सोने का इन्वर-रिम (कर्नाभरथ) इन-फुलेक आदि खरीदकर उसे इस अपने नैवते के साथ दे दिया। यह काम उन्होंने बिलकुल पुण्यपुन किया। जब वह छापी के वाक लीटा तब यह रहस्य जुला। वह अपने ऐसे पुठ उप कारों की कमी कही बर्षा तक न करती थे। उसकी कमाई के अधिकांश पैसे पौन भाव से परोपकार में ही खर्च होते थे।

मुहनी-रथ (मुजफ्फरपुर) के कार्यालयसे से लखनऊ लीटते समय मुझसे मिलन के लिए बीच में छपल उतरे तो रिक्शेवाले की कमी यंत्री देख उससे इत्तनाक पूछने लगे और एक नई यंत्री तथा एक नया यंत्रोत्ता खरीदकर अपने सामने ही कटी यंत्री निकलवाई और नई यह नाई। वह बेबाप रीता हुआ उसके चरणों पर लोटने लगा। ऐसे सपकार बड़ किया करते थे।

निराशाधी खड़ी बोली की नई बाप के कथितकारी बरि तो वे ही पबनापा के भी रसविद्य बरि थे। बारबाड़ी बिचकार पं० मोतीलाक शर्मा (कलकता) की बिबावली में प्रत्येक बिच के नीचे सनका किता

ब्रजभाषा का पद्यात्मक विन-परिचय प्रकाशित हुआ था जिसे बैलकर काकपी (उत्तर प्रदेश) के बयोबुद्ध साहित्य-सेवी बाबू कृष्णबलदेव वर्मा चकित होकर निरामाजी की ओर बढ़ी बैर तक मुग्ध मुद्रा से बेसते रह गए। वह महाकवि केदारदास के विद्येयज माने जाते थे और 'विद्याल-भारत' के संयुक्त सम्पादक बाबू ब्रजमोहन वर्मा के पितृव्य थे। 'यतवासा' काया कथ में वह प्रायः आया करते थे। निरामाजी के कविता-पाठ का अभिगम भी देख चुके थे। जानते थे कि निरामाजी हिन्दी के प्राचीन साहित्य से अनभिज्ञ हैं। पर उस दिन ब्रजभाषा की कविता-रचना में निरामाजी की निपुणता देखकर वह ऐतिहासिक की कसीटी बर निरामाजी को परस्पर सजे। निरामाजी ने तुलसी से केदार की तुलना उस स्थल पर की जहाँ राम की बनयाजा में सीता और लक्ष्मण सावधानीपूर्वक राम के पदांग को बच कर चलते हैं। 'रामचरितमानस' और 'रामचरिका' के लेख ही कई स्थलों पर जब निरामाजी ने तुलसी के साथ केदार को मिटाकर दोनों के जोहर बिछाए, तब कर्माजी को उनकी विचार-सर्पि में अमूठ पूर्व नवीन अवका अहहपूर्व बिलक्षण चमत्कार सीत पड़ा साथ ही लोहा भी मानना पड़ा। निरामाजी बहुमुखी प्रतिभा स कितने ही लोग विस्मित हो चुके हैं पर जब तक वह प्रतिभापत्र रहा हमन नहीं पहचाना।

उनके ध्यायारमक विनोद भी नहीं भूलते। मेरा सीतला विवाह हुआ तो मेरी धर्मपत्नी को देगने काशी आये। भाई जयजी पहले ही आकर देव गए थे। बत्रकर बहुत प्रमत्त हुए। मैं कामभरख की चौमुहानी के पाम रूठा था। बहो बुडा महादेव मलाईपाला बड़ा नामी था। भोजन के समय पूजा-पूरी और गीर के नाच बहु पाड़ी मलाई भी थी। मैंने कहा कि महादेव की मलाई की ठापीऊ यह है कि उसमें उंगली नहीं मड़ती। हँसकर बोले 'अच्छा तो जाने नय अनुभव के अनुभार किमी दूखरी ऐसी बीज का नाम बतलाए विनम उंगली न मड़नी हा और विनवा रबाद भी लेमा ही आनन्ददायक हो। मेरी देहाली पत्नी दम विनोद को न समझ सरी पर हम दोनों गूब हँस। विष्णु जब मैंने कहा कि पूरी और शाक ही अधिक ता रहे हैं, पूजा और तीर-मलाई भी माँग-जांगरर

त्रिभु संस्था (रामकृष्ण-मिशन) में रहता हूँ उसका मुख्य सिद्धान्त सेवा-पथ का पाठम ही है।

ऐसा आदर्श पुरुष हिन्दी में कहीं कोई है ?^१

द्वैतीयम पुरुष 'निराला'

राष्ट्रमाया हिन्दी के हृदय पर प्रोफ़ेसर नलिनबिकोपन शर्मा के निबन्ध का पाठ बनी हूँ ही था कि महाकवि 'निराला' के निधन ने उसमें बड़ी कुरता से मल लगा दिया। यह पाबिल शरीर तो नरवर है ही पर जब तक इस लोक में हिन्दी रहेगी तब तक उनका योग-शरीर अमर रहेगा। कवि कथाकार, निबन्धकार, पत्रकार, उपन्यासकार और आलोचक के रूप में भाषी पीढ़ियाँ उनका सादर स्मरण करती रहेंगी। जो कोई उनके सम्पर्क में आया उनके दौल-सौजन्य से प्रभावित हुए बिना न रहा। उनकी प्रगट मेधाशक्ति उनके रचे साहित्य में प्रतिबिम्बित है। उनकी सहृदयता और उदारता वर्तमान हिन्दी-जगत् में अनुत्तमीय कही जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। उनके समान अतिवि-भक्त-परमपथ तो बहुत कम ही लोग होंगे। निःस्पृह स्वामी तो वह ऐसे थे कि उनकी तुम्हारा कोई व्यक्ति साहित्य-संसार में आतीं ठले नहीं जाता।

उनको लोग दूर कुछ दिनों से अर्द्धबिभ्रष्ट कहन लग गए थे पर वास्तव में किसी प्रकार का उम्मार उनमें नहीं था। अपनी ही चिन्तन-घाट में सतत तल्लीन रहने के कारण वह प्रायः बाह्य-ज्ञानरूप्य रहा करते थे। यह उनका जन्मजात स्वभाव था। 'मठवाला के समय से ही मैं उठेँ बेगना माया कि चिन्तनजीमठा के कारण सामने ही होती हुई बात भीत बढ़ नहीं सुन पाते थे। कई बार समा-नम्मेत्तमों में जाकर वह सींगे पर पूछने लगते थे कि अबुद्ध बद्ध मे क्या-क्या कहा। ऐसे विरह विरक्त होने से ही वह जीवन भर स्वामी पीपकों द्वारा चूने गए। उठेँ बदि अपने

१. सैगन : ११ अक्टूबर १९९१।

प्रकाशन : मार्च १९९१—'विश्वना (विद्वान्-नीरवण्य बद्ध), नवतनक।

ठग वा छले जाने का ज्ञान भी ही जाता था तो वह अपने मंगीह्वत सील की मर्बादा का उत्सर्जन नहीं करते थे । कभी-कभी तो वह जान-बूझकर प्रत्यक्ष प्रबंधनामों और प्रधारणामों को हँसते-हँसते उपेक्षित कर देते थे । अपनी प्रतिमा और कमाई से दूसरों को अनुचित लाभ उठाते देखकर भी वह उन लोगों के प्रति सदा सहानुभूतिधीक ही बने रहे । दूसरों के काम और हित के लिए अपनी अहित प्रत्युपाधि का स्वेच्छा और उत्तोप के साथ उत्सर्ग करने में वह स्वभावतः सुख का अनुभव करते थे । परोपकार करते रहने की उनकी सहज प्रकृति की पर कभी कहीं उसकी चर्चा तक न करते थे ।

मठ वर्ष नवम्बर (१९६०) में उनकी अस्वस्वता का विवरण दताने वाला एक छपा पर्चा मुझे प्रयाग से मिला । मैं २३ नवम्बर को उन्हें देखने के लिए प्रयाग गया । लीडर प्रेस में भारती मण्डार के व्यवस्थापक पंडित बाबुस्पति पाठक के घर पर सामान रखकर सीधे उनके पास दारमंत्र चला गया । मेरे साथ मेरा स्पेष्ठ पुत्र (जानम्भमूर्ति) और मेरा पाँच वर्ष का पौत्र (कन्कू) भी था । मुझे अपने जाने उपस्थित देख वह अत्यन्त प्रसन्न हुए । कुसक-संघके के बाद हाल-बाल पूछकर बाले कि आप दूर की माया में एक हैं । एत हो रही है याकर विद्याम कीजिए और एक मात-कास यहाँ बा बाइए, तक बिन नर बाठचीत होगी- घोबन भी यहीं मेरे साथ करना होगा । उस समय मैंने देखा कि उनके पैरों में कुछ सूजन है । उनके एकमात्र कुपुत्र पं रामकृष्ण त्रिपाठी भी उनकी सेवा में था गए थे । पता चला कि उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मन्त्री डॉ० सम्पूर्णानन्द और त्रिजायन्त्री पं० कमलापति त्रिपाठी वहाँ उन्हें देखने आये थे तो विशेषादेत द्वाय रामकृष्णजी का ठकारला छाँसी से प्रयाग कर दिया था । वह छाँसी में संवीत के प्राप्पापक थे । अब प्रयाग में जाकर वह अपने पुण्य पिता की सेवा-शुभूया में हाय बँटाते थे । उनकी परिवार मन्त्री छाँसी में ही था । उनकी इच्छा थी कि दारमंत्र में एक मकान सेंकर परिवार के साथ पिताजी की सेवा करते रहें । किन्तु यह जानकर भी मुझे आश्चर्य नहीं हुआ कि निराकारों स्थापन-परिचरतन करना नहीं चाहते । उक्त मन्त्रियों और डॉक्टरों की समाह मानकर वह सरकारी अस्पताल में जाने

को भाषा वह सुबह होते-होते ठिकाने लम गया। वह बुद्धिमानी नहीं के बिपयी भी नहीं थे। परम्पु यारों को पता रहता था कि उनके पास रुपये भाये हैं और वह अकरतमर्थों के सामने इन्कार नहीं कर सकते। उनकी मुक्तहस्तता से काम उठाने के लिए बहुतेरे लोग बरबस अकरतमर्थ बन जाते थे। रेशमी कुरता और रेशमी चादर भी सामब हो जाए तो उसकी खोज या चिन्ता में तनिक भी परेधान नहीं होते थे। तकिया-तखे कितने रुपये रखे थे और कितने खर्च होने से बच गए हैं, यह बाद रतना उनक लिए धन्य नहीं था। उनके इस विस्तरण स्वभाव से जो लोग परिचित थे वे उन्हें कल्पवृक्ष ही मानते थे। कल्पवृक्ष तो वह दीन-बुधियों के ध ही पर गड्ढी या बनाबटी बुधिया भी उनक पास पहुँचकर बहती गंवा में हाथ धो लेंते थे। सचमुच यह उन अम्य पुरुषों में थे 'जिनके लहहि न मंगल नाही'। कामिनी-काचन से उबासीन और बिरक्त रहने वाला ही तो महापुरुष कहलाता है।

निरालायी की रचनाओं पर विचार करने का यह अवसर नहीं है। पर यह तो बिरोध रूप से उल्लेखनीय है कि वह भाषा के असाधारण पारंगी थे। भाषा की प्रकृति खेसी, पाप और पुत्रता परखने में उनकी दृष्टि बड़ी खेनी थी। 'मठबाला' में वह 'परजनसिंह बर्मा' के नाम से पत्र पत्रिकाओं और नई पुस्तकों की भाषा पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया करते थे। धर्मों के बिमय प्रयोगों पर वह हमेशा ध्यान रखते थे। कविता या गद्य की कोई पुस्तक या रचना पढ़ चुकने के बाद उसकी अगुधियों तथा भाषा-भाव-विषयक असंगतियों पर बड़ी मार्मिकता से अपनी निर्णयत्मक सम्मति व्यक्त करते थे। हिन्दी-संसार के गुरगुर-ने गुरगुर छाहित्यकारों में भी जो बात उन्हें लटक जाती थी उसे स्पष्ट प्रकट कर देते थे। इस बिषय में उनकी मूर्धन्यगता बिलसत थी। भाषा की बाँटौधियों की पहचान में पं० अबन्नायप्रसाद अनुबेही बड़े दस के किल्लु ऐसा प्रसब छिड़ने पर उन्हें भी निरालायी का लीहा मानना पड़ना था। निरालायी के युतियुक्त तर्क से कायक होते उन्हें भी मने देना है। यह नाम निरालायी कभी उत डूप से प्ररिठ ह्राकर नहीं करने थे। हिन्दी के स्वरूप को निरालायक बनाये रखने के लिए ही वह धर्म-योत्रा और

बाग्य-विन्यास पर गहरी निगाह रखते थे। भापा-सम्बन्धी अराजकता उन्हें असह्य थी। तब भी इत विषय के विषाद में किसी से सलसला उन्हें बचीष्ट न था। इसीलिए वह कल्पित नाम से 'मठबाबा' में सपाठार सेवक माता लिखते रहे। हिन्दी की तो बात ही क्या बंबला भापा के दुष्प्रयोगों पर वह अपने सहवासी विद्या बंगाली संस्थासियों को चुनौती दिया करते थे। भापा की कृषियों और छात्रियों पर उनके समान सूक्ष्मेक्षिका दृष्टि रखनेवाला कोई सहज प्रहरी जब नहीं सूझ सकता।

निरुद्धाजी अपनी जवानी में कुष्टी भी लड़े थे। 'मठबाबा'-कार्यालय में भी वह कुछ लपाकर कछरठ किया करते थे। उक्त मूछीजी जब अपने घर (डिंडा बलिया) जाते थे तब उनके लिए बंदा की चिकनी मिट्टी लाया करते थे। इस समय उनके छिर पर काभी-काठी बुझें थीं। बैठती उनके लिए बेच-रंजन और बजाकुमुन सेठ साकर रहे रहते थे। इतना ही नहीं उनके बूते में राब पाकिष्ठ भी किया करते थे। जब वह बाहर घूमने निकलते सेठजी उनकी बेच में कपड़े-पैसे डाक देते। किन्तु छोटने पर एक पैसा भी उनके पास बचा न रहता और कोई चीज भी खरीदकर नहीं लाते। मिचारी भी उन्हें पहचान नए थे क्योंकि बेटा बबबरवानी कलकता-भर में कोई पिछा न था। जेब में हाथ पड़ने पर जो कुछ बना बाब निकल जाता वह भाये पठने हाथ पर डेनुची से रखकर अपनी राह चले जाते। उनके बचकड़ मिचारा की बाहू कभी मिचती न थी। मूछीजी भाय-बताननी बैठे रहत थे कि हाथ समाहित और मविष्य के लिए संभव भी बौजिए। वर्तमान का ही उन्हें प्यास न था तो मविष्य की क्या कथा। वह तो व्यायाम के समय अपनी फूठी छाती और मांसक भुजाओं की मांसपेशियां ही देख-बेसकर प्रसन्न होते थे बुझाये की कल्पना उनके उत्पुष्क मस्तिष्क में क्यों जाती। वह पुष्पार्य के कवि थे। सबक तन-मम में सदा पीस्य का टेज-ओज भय रहता था। पहले-पहल उनकी कविता पुस्तक 'अनामिका' निकली तब अमिनद की भावबन्धी के साथ वह उठ जब मुनात लने उनके पुषपाय का ऐमांभकारी रूप सम्मने बड़ा हो गया। वह बड़े कृपक और सक्षम अमिनेता भी थे। यहिपायक (बंगाल) के राजा उनके अमिनद-कौशल पर मुग्ध होकर उन्हें राजकुमार की तरह साइ

प्यार करते रहे। किन्तु मिचला किसी प्रकार के राजसी प्रकोपन के शिकार होनेवासे व्यस्त न थे। योद्धा से मधुरा बल आये तो भूस्ते-मटके भी मोबुल की ओर रुख न किया। चौकीनी का मजा भी खूब किया। भारतेन्दुजी की तरह बंजसि में इन की चौकी उठितकर बस्न में पोटा और कमी मैले-मुर्चसे पहने ही तलहशी पर गुराही मल्ले बाजार की ओर नये पाँव नये बदन निकल गए। उन्हें इसका भान ही न था कि कल मिलने चुनदार बोटी-कुरछे में देला है वह आज फटेहाल देखेगा तो क्या कहेगा। किसी के कुछ कहने-सुनने की परवाह उन्हें भी ही नहीं।

मिचलाजी भ्रातृकारि विचार के थे। उन्होंने काव्य-शैली में अन्ति उपस्थित कर दी। वह भुय-अवर्तक के साहित्य-क्षेत्र में नवयुग का नुनभाव लिखाकर उन्होंने अपना नाम सार्वक किया। सब सही है, पर सबसे बड़ कर वह वैभोपम मनुष्य थे। उनकी मनुष्यता ने ही समस्त लोक-पालक को अपनी ओर आकृष्ट किया। यदि वह निष्कपट हृदय और उदात्त चरित्र के व्यक्ति न होते तो केवल प्रतिमा के बल से साहित्यिक समाज के हृदय पर एकाधिपत्य स्थापित न कर पाते। पूर्ण मानवता ने उनकी प्रतिमा को विरोध उदीप्त कर दिया। उनके मनुष्यत्व की महिमा से जो परिचित हैं वे उनके विषय में कहीं हुई भ्रातृ धारणाओं को तर्बना निराधार मानते हैं। एक बार पुष्प प्रबसनी (कलकत्ता) में सेठजी ने पाँच रुपये में खरीदकर एक सुन्दर मुकुटा मिचलाजी के हाथ में बसाया। जब घूम-निकरकर सब लोग कार्यालय में आये तब पत्रा बला कि वह गुल बस्ता प्रबसनी में ही नहीं छोड़ आए, जिसके लिए उनको साप लेकर सेठजी फिर द्राम बर प्रबसनी गये पर मिचलाजी को स्वरूप ही न रहा कि नहीं छोड़ा। सेठजी ने जाड़े में उनके लिए शकरलारे की एक निहायत नकील दुलाई बनवाई। बड़े प्रेम से हाका-बम्बल गरीब लामे बड़िया रंगों में दोनों पन्ने रँगवाए, कई भी लाल-हूँटी रेंती गई उस पर अबरक की परनें जड़ी गई। मात्म का बीड़ा हाँगिया चारों ओर लगा ऊपर से घनी मुजनी भी पड़ी। मिचला भाँडकर मुसकराये भी पर एक दो सप्ताह बाद उसे एक मिगमगे जो भोजा दिया। बड़ाके की सरी में वह बंधन मुने भंय उनके सामने आ गया बस शट बंधन तब से

उठारकर उसकी देह पर अपने ही हाथों लपेट दिया। मिन जीबक ही देखा तो सेठजी और मुंशीजी को प्रेस में स झुलाने लड़ा। जब तक वे दोनों बाहर आये तब तक वह नकलची मंथन सूझकर हो गया। कस्पमा तीव्र प्रसन्न पाते ही उसके पैरों में पंज लग गए। सेठजी स्वयं रीढ़ पड़े पर वह माम्बाम् बयों मिलने लगा। और निराशात्री? वह तिलमिष्ठा कर हंसते ही रहे “बयों आप लोग परेगान हो रहे हैं—बेबाप मायम से जाड़ा काटेगा।” सेठजी न भी हंसकर ही कहा ‘आप भय्य हो महाराज।’

निराशात्री तो निस्सन्देह भय्य थे। पर अब छोटा भय्य-भय्य कहने से कोई साम नहीं। उनकी समस्त रचनाओं को ‘निराशा-प्रत्यावर्ती’ के रूप में प्रकाशित करने का संगठित उद्योग होना चाहिए। उनकी बर्षों पर उनकी प्रत्यावर्ती की ही अष्टावलि अमित हो सकती तो हिन्दी-भाषा को बन्धुत बढ़ी साम्बना मिलती।

निस्सन्देह उन्होंने हिन्दी-भाषा को अपना सर्वोत्तम बान दिया। उनके आलोचक अब निस्मृति के यम में कपी के बिछीन हा चुके होने निराशात्री का नाम इन्द्रजटापूर्वक स्मरण किया जाएगा।

निराशात्री को यह बाधा थी कि स्वयम्भ होने के बाद राष्ट्रमाया हिन्दी का बालबाधा होना पर वह पूरी नहीं हुई। इससे वह अत्यन्त निराश हो गए थे। जब बबिबर व्यदेव सनेहीजी उनसे मिलन मये तो उन्होंने सनेहीजी से कहा था ‘रेखो मैं मरना चाहता हूँ और लोग मुझे मरने भी नहीं देते! मैं किसके लिए जीऊँ? माय भापा और साहित्य तो राबनीति के बसन्त-सस्रन बन गए हैं और हिन्दी की आ दुर्दसा हो रही है, उस में अब और नहीं देज सकता। बंयेजी ही आज सर्वप्रिय माया बनी हुई है—जनता समझे या न समझे।’

निराशात्री के जीवन में हम आय उनके प्रति न्याय नहीं कर सके। अब यदि उनके स्वर्नबास के बाद उनकी कीर्ति रखा के लिए समुचित उद्योग करें तो उस उपेक्षा का कुछ प्रायश्चित्त हो सकता है।

यी बरबा ने उन पर एक प्रम्ब निकालकर और उनकी एक किन्म बनाकर बड़ा उपयोगी कार्य किया था और तबयं वह पय्यवार के

पात्र हैं। एक बार तो निरालाजी की समस्त रचनाएँ छप ही जाती बाहिरें और तत्पश्चात् उनकी बुनी हुई धोखे रचनाओं को एक विस्तर में छपा देना ठीक होया।

निरालाजी की कविताओं का उचित मूल्यांकन अब ही देर-अबेर से हो पर वह अमर है।^१

दीनबन्धु 'निराला'

महाकवि रवीम के प्रसिद्ध दोहे की यह एक पंक्ति महाकवि निराला पर सटीक बैठती है— 'जो रवीम बीनहि लखै दीनबन्धु सम होय।' निराला सचमुच बीनों की ही बराबर बखते थे और उन्हें छलते-छलते वह भी दीनबन्धु के समान हो गए थे। दीनबन्धु के समान न हुए होते तो समस्त हिन्दी-संसार में आज उनकी जैसी लोकप्रियता बीन पड़ती है वैसी आज तक किसी साहित्यकार की नहीं बीन पड़ी थी। धर्म उनको अर्चना बड़ी भजा से हा रही है। बड़े-बड़े पुरखर महारथी साहित्य-संसार से बलें गए, किसी को निराला के समान सांख्यिक सम्मान नहीं मिला। अपने जीवनकाल में भी वह साहित्यानुष्ठानियों के लिए आकर्षक वेग्ड और भजा भाजन बने रहे। मृत्यु के बाद भी उनका सारर स्मरण विविध प्रकार से किया जा रहा है। यह उनके पुण्याचरण का ही प्रभाव है। पुण्यपीठ के पास सब विभूतियाँ आप-ही-आप आती हैं। दीनबन्धुना से बड़कर पुण्यपीठता और है ही क्या? दीनबन्धु भगवान् को मस्तुट करने का सर्वोत्तम उपाय बीनों का सच्चा बन्धु होना ही है। निराला भी सच्चे धर्म में दीनबन्धु थे। अपनी शक्ति के अनुसार वह जीवन-वर्षन बीन दुगियों की सेवा-महाभजा करने रहे। जहाँ सेवा-महाभजा में समर्थ न हो उनके बड़ा हादिक सहायुभूति का ही उपयोग करके मस्तुट पाया। पर हर बड़ी उनके मन में बीनों की सेवा-मुभूया की वाचना बागनी ही रही।

१. मैगन : २७ अक्टूबर १९११।

मस्तुटन : २ नवम्बर १९२१—'मन्नादिक दिगुस्तन' तर दिन्नी।

पुण्य निराकात्री

परमात्मा ने उनकी मनोवृत्ति और प्रवृत्ति समझकर ही उन्हें सबसे पहले श्री रामकृष्ण-मिशन की सेवा में नियुक्त किया था और उन्होंने भी 'यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि' को बसारा 'विरहार्थं क्रिया । परमहंस श्री रामकृष्णदेव के बेलगुह-मठ (कलकत्ता) में प्रतिवर्ष परमहंसजी और स्वामी विवेकानन्दजी की जयन्तिया तथा पुण्यस्मृति-तिथियों पर वहाँ रहितनाचयण को विभिन्न भोजन कराया जाता था । मिशन की प्राचा विवेकानन्द-सोसाइटी के विद्वान् संन्यासियों के साथ 'समन्वय'-सम्पादन किया जाता था । उस विराट् आयोजन के कार्यक्रमों में निराका कबूट रहितनाचयण का योग्य पदावधि विरहित करने का ही काम अपने जिम्मे लेंते थे । कंगालों के बिलान में उनकी महती लयन रेल लोग मुग्न हो रहते थे । वहाँ अधिकतर बंदीय भद्र समाज ही जुटाया था और निराका मातृभाषा की तरह बंगला-भाषा बोलकर समापत समाज को आप्नायित कर देते थे । वह बंदीय समाज में दूब मिसरी की तरह बुल-मिल जाते थे । स्वामाधिक रीति से बगला बोलन वाला व्यक्ति हीन ही बंगाली बगुलों का भारतीय बन जाता है । अच्छी बंदीय और 'सौदी' बंगला बालने के कारण ही वहाँ के समाज में भी वह पूज्य समाज प । बंदीभाषा के साहित्य में उनकी पैठ किसी विषयय बंगाली से भी कम न थी । उस समाज के लोग आपहपुर्ब उनसे कबीर रबीर के गीत गवाकर गुनते और वृत्त होते थे ।

भगवद्भित्तियों उन्हें पूब मिली थी । आकर्मक रूप लम्बे-लम्बे लोकगीत का शरीर, व्यायाम के अभ्यास से मुचरित स्वास्थ्य बिलक्षण मेवाशक्ति लक्षित मनहर कण्ठ, बयार हृषय चिन्तनशील मन्त्रिय उद्भावना-शक्ति-सम्पन्न बुद्धि—मन-बुद्ध समबान् ने उन्हें मयूर दिया था । बड़ी-बड़ी मुहावनी कुमावनी बालें बमकती वाकिम-दधानावली धुंधरासी अलकावली कबु मुकबिबद, पतले-पतले बभद, पतली-पतली बौरी मगु क्रिया प्रपस्त बभस्यत हर तरह सिरबमहार ने उन्हें संबाप का । त्रिम मण्डली में बँठ जात प उसे अपने व्यक्तित्व से जयमगा देत प । उनकी नुस्के टकटकी बाँध लती थी । कविता-याठ की भावमगी भाषाओं के हृगत भावों को उद्घीप्त कर देती थी । 'मनबाला'-सम्पन्न (कलकत्ता)

मे एक बार एक बनी-मानी बंगीय परिवार से उनके विवाह का प्रस्ताव भी आया था। पर वह तो एकपत्नीव्रत थे। उनके पास तो युवती छायाएँ भी साहित्यिक उद्देश्य से आती थीं। छात्र भी आते थे। पर वह किसी छात्रा से वातावरण करते समय भी कभी बचकर नहीं चले थे। कामिनी काम्बजन का त्याग करके वह सुहृद्बोध में ही संन्यासी बने रहे। यदि उन दिनों मोहक पदावली के प्रति उनके मन में आसक्ति होती तो उन्हें हस्तगत करने वाले गुण उनमें पर्यप्त थे। किन्तु सांसारिक सुगमोपों की वासनाएँ उनकी पत्नी के साथ ही बिलौन हो गईं। कंचन की कामता कभी उनके भीतर जाँकने भी न पाई। इष्य के लिए उनका कष्टम प्रवाह-क्षेप मात्र था। इष्य-संचय उनका ध्येय कभी रहा ही नहीं। पर उनके पास अतिथि के समान अल्पावधि तक ही ठिकने आना था। अजर हज्जार आया तो डेढ़ हज्जार के स्पर्श का चिट्ठा पहले से तैयार है। अभावप्रदों के अभाव उनके विभाग के बावरे में खँडछले चले थे। मरयेट पाने के लिए तरसने वाले निवीदिये से लेकर मेहनत-मजबूत करने वाले मजदूर तक उनकी निगाहों में बस हुए थे और जब कभी उनके मन मात्रिक अर्पण हो जाता वह सुरत उन मरपुत्रों की ओर षोड़ जाते। 'जिमके लहँहि न मंगन नाही ते नर बर बारे जग माही —उन्ही बोड लोपों में वह भी एक थे।

'मत्तबाला'-मण्डल में मिगमयी की समस्या पर घोर अलवारों में ऐसे इस विषय के समाचारों या लेखों पर जब कभी बातचीत होती थी यदि निराला वहाँ उपस्थित रहने बड़े आशय में वह अपने मुक्तिमुक्त तक उपस्थित करते। वह देग म फली हुई आर्थिक चिन्मता पर सम्यक् साधन करते समय उत्तम साम्यकारी प्रतीत होने थे। यद्यपि हृष्ट-मुष्ट भिक्षुओं के प्रति उनकी महानुभूति भी उग्रुग नहीं थी तथापि अममर्ष या अपाहित्र मिगारियों की दयनीय वृत्ता के लिए वह धामन और समाज की ही तीव्र आलोचना किया करते थे। संघर्ष मूल अग्ने कोड़ी और निराम्य दीन-दुविदा पर ही उनकी दृष्टि अग्रणी थी किन्तु तो वह अपनी भारतविक परिस्थिति को बिलकुल भूल जाते थे। बलकला-महान महान पर की मर्दा की वाना पदरियों पर वह हँड्ड चिरेते थे कि मनुज की

बेचारा बीसी कुमठि में है। उनका अधिवास अन्धकार-काष्ठ दीनों की दुनिया में ही बीजता था। बड़ी कृपाओं पर निष्कारियों के सिवा बहुतेरे निराशित गरीब और कुम्भी-नबाड़ी भी रात्र में पड़े रहते हैं। उनके लिए बीड़ी सूती मूत्रा बना भूगफली खादि खरीदकर वितरण करने वाला बन कुबेरों की उच्च महाजदरी में निरामा के सिवा दूसरा कोई न देखा गया। बड़े-बड़े सेठ बनीबोटी रात्र में भी उन परतियों पर से गुजरते थे पर कहीं-कहीं कभी दो-चार पैसे फेंकनेवाले मर्के ही बीज जाएँ, निराशा की छाड़ उन बीना से आत्मीयता स्थापित करने वाले बूढ़े भी नहीं मिल सकते थे। उस महाजमर में नाका प्रकार के मनोरञ्जन के साधन हैं। क्या उन्हें उपबन्ध करने के लिए निराशा को पैतों की कमी थी? किन्तु उनका मनोरञ्जन तो बीब-मुच्चियों को सुख पहुँचाने से ही होता था। कोई मित्र उन्हें बिनेमा-पियेटर मले ही ले जाएँ, उनके पैसे तो मूछे रखे घटीयों की सेवा में ही अपने पर अपनी चार्बक्या समसते थे।

निराशा कबक छाड़ते या बाबायें और स्टेरनों के मन्वर मिचने वाले बीजकों पर ही ध्यान नहीं देते थे अपने गाँव और पड़स के एरीब गृहस्थों की सहायता का भी ध्यान रखते थे। उनके पाँव और दिल के भी कई बाबमी उनको उद्यच्छा या बालचीसता की कहानी सुन कर उनके पास आ बसकते थे। अतिथि भी उनसे विविध जाति के होते थे। परिचितों और कुटुम्बियों के अतिरिक्त ऐसे लोग भी कसकता तक बीड़ छपाकर उनका पीछा करते थे जो उनसे किसी-न-किसी प्रकार का लगाव बाइकर उनके बील-बीजन्व से काम उँठ लेते थे। भोजन के सिवा कपड़े-बूत की माँग तो होती ही थी बचते समय राह-बर्ष की क्रमाइत भी होती थी। देखनेवालों को मले ही बहु नागवार बालूम होता हो पर निराशा की दान्ति भय नहीं होती थी। उनकी दान्ति तो लबी भय होती थी जब किसी ककच्छमन्व की मदद नहीं कर सकते थे। किसी आदमी को अपने से अनुचित काम उछते देखकर भी उनके धर्म को छेड़ नहीं ल्यती थी। बूबयों के लमाव को अपने ऊपर भोष लेने से भी उनका दान्त-मन्मीर हूदक कमी विचकित होता नहीं देखा गया। अगर कोई कहता भी था कि आप इतना खरदम क्यों पाकत हैं ऐसे पर-मुण्डे

स्वर्गीय आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री

बिहार प्रदेश के साहायार जिले में 'ब्रह्मपुर' बहुत प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ पद्मस्तुती और बँघाठी सिक्खि के अक्षर पर बहुत बड़ा मिला होता है। सिक्खी का बीसा विद्यालय और प्रसस्त मन्दिर बिहार में पायब ही कही हो। कहते हैं कि महाकवि तुलसीदास वहाँ जाये थे। वहाँ से एक बड़े कोस दक्षिण ओ 'रघुनाथपुर' नामक गाँव है, उसका नामकरण पोस्वामी तुलसीदासजी ने ही किया था। यह रघुनाथपुर पूर्वीय रेलवे का एक स्टेशन है।

उपर्युक्त ब्रह्मपुर से लगभग एक कोस उत्तर 'निम्बेख' नाम का एक बड़ा गाँव है। शास्त्रीजी उसी गाँव के निवासी थे। पर उन्हीं के कथानुसार यह अवनवासन में ही जा कर से निरसने तो फिर गाँव में अभी बसेरा न किया। तबोपवास यदा-तदा गाँव जाते-जाते बंघिनु रहे जीवन भर बाहर ही। कहा करते थे "बचपन में मुझे पुइसवाठी का बड़ा पीक था। यथा और सती पर चढ़कर अम्पास करता था। सेती में चरने हुए लरु लरुओं पर चढ़कर प्रमत्ता बसता था। तब भूप और सर्पा की भी कुछ परवाह न थी। बचपन का यह अम्पास सपना होने पर पुइसवाठी में बड़ा नाम थाया।"

एक बार पंडित सकलनारायण घर्मा (मशामहोपाध्याय) से बात चीन करते समय शास्त्रीजी ने उपर्युक्त बातें बतलाई थी। घर्माजी ने भी अपने बचपन का विस्मा सुनाने हुए कहा था "मैं तो उठनी पवामी तक मैतानी रहा बचपन में नन्दरी मन्गट और रंग उग्रन तक हुरदी।"

हिन्दु धर्म के ये दोनों कुम्हार जागे के जीवन में संस्कृत के उद्भूत विद्वान् हुए । हिन्दी-जगत् में भी दोनों का यम अमर है ।

शास्त्रीजी जब बाबू के तमी उनके मन में विद्याभ्यास काग उठा । वह कुमरौब (पाहाबाब) जाकर वहाँ के राजा की संस्कृत-पाठशाला में पढ़न गये । ऐसे प्रतिभाशाली निकले कि वृद्धे विद्यार्थी उनसे बड़ी ईर्ष्या करन लगे । पर सत्प्रतीतिता उनके स्वभाव की मुख्य विशेषता थी । ईर्ष के साथ उन्होंने काशी जाने की माय्यता व्यक्त कर ली ।

काशी में उन्होंने कबीर कौशिक में नाम लिखाया । कौशिक के प्रिथिवर बेनिष्ठ साहब न उनकी स्मरण और धडा से तन्मुख होकर कई अग्रज और अग्रज छात्रों को संस्कृत सिखाने का नाम मीप दिया । शास्त्रीजी कहा करत थे कि बेनिष्ठ साहब तो संस्कृत के अनन्य अनुग्रही थे ही संस्कृत सीखनेवाले अंग्रेज और फ्रेंच तथा जमन छात्रों में वो तत्परता थी वह भारतीय छात्रों में भी नहीं थी । यूरोपवालों के संस्कृत प्रेम की प्रशंसा वह प्रायः किया करत थे । जिन विदेयी छात्रों को वह संस्कृत पढाते थे उन लोगों में बेनिष्ठ साहब से शास्त्रीजी की बहुसुत भवागति की बड़ी प्रशंसा की । बेनिष्ठ साहब भी उन्हें प्रत्येक कला में सर्वोच्च स्तान पाठे देखकर बहुत प्रभावित हुए थे । उनके शास्त्रीजी को प्रोत्साहन तो मिळता था पर वह कभी उनसे अपने अभाषों की चर्चा नहीं करत थे । उन्हें जो क्षमकृति और संस्कृत बताने का पाठिमिक मिळता था जती से अपना निर्वाह कर लेते थे । कुमरौब अथवा काशी में पढ़त समय कभी पर से कोई सहायता न मांगी । स्वावलम्बन ही उनका आजीवन बत रहा । जब वह अपने अभाषों और कर्णों की बहानी मुनसे करते थे तब उनकी विद्वता और तपस्या देखकर उनके प्रति अनायास ही अडा उत्पन्न होती थी ।

आभावस्था में उन्हें कई बार भूखें छ् जाना पडा । बाड़े में भी भोटी की जबह वंगोडा-मात्र सनेटे, ननि बदन कमरुड बाड़े छ जात । पर किसी बधा में उन्हें कभी किसी के जाने हाव नहीं पडात । एक बार ता पीसा न रहने पर अपने गांव से पदक ही काशी की ओर चल पड़े थे । अभाषों और कठिनाइयों को वह ईस्वर की देन कहा करत थे । हर

हालत में सर्वत्र प्रसन्न रहना उनका सहज स्वभाव था। दखिता को वह अपनी जीवनसंगिनी कहते थे जिसका बरन उन्होंने स्वेच्छापूर्वक किया था।

वहाँ तक मुझे बार है लयमय बाबन बर्य की उम्र में भूकम्प के साथ उनका वैहास हुआ तो हिन्दी-संसार के प्रतिष्ठित विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओं ने मुक़्तक़ण्ड से उनका पुनर्गात किया था। उनके विषय में लोकोक्त का उतना ढ़ेबा परउक्त होकर ही समझ में आया कि वह वैरा की किरतनी बड़ी विभूति थे। परन्तु यह संसार कभी बुगपुष्प को जीते-बी नहीं पहचानता।

शास्त्रीजी के काशी के सहपाठियों में स्वनाममय पंडित रामावतार शर्मा (महामहोपाध्याय) भी थे। महामहोपाध्याय संगमर शास्त्री के दोनों ही पट्टधिय थे। दोनों ही अपने युग की गोरक्षवृद्धि कर गए। शर्माजी को भी उनके निबन्ध के बाद ही बड़े-से-बड़े विद्वानों ने कपिल-कमांड के तुल्य कहा। यही इन संसार की रीति चली आ रही है। शर्माजी और शास्त्रीजी ने बिहार की परती पर प्रथम लेकर जमे धन्य बनाया पर उसने दोनों अगमोक्त कालों को ठीक-ठीक नहीं पहचाना। मृत्यु के उपरान्त ही पिण्डदान की तरह कीर्तियान करने की भी परम्परागत प्रथा है। शास्त्रीजी सबसे त्यागी-तपस्वी थे यह बात भयर दुनिया निपोड़ी उनके उड़ जाने से पहले समा पाती तो सायद उनकी असलियत की पील तुल पाती।

शास्त्रीजी के लक्षप्रथम दर्शन का सीमाय मुझे प्रयाय में प्राप्त हुआ था। विद्यापी के लम्पारक पंडित रामजीलाल शर्मा (अब स्वर्गीय) के घर पर बैठे वह कुछ लिंग रहे थे। उस समय वह 'धारदा' नामक नरभूत मासिक पत्रिका के सम्पाक थे। 'समाज' नाम का एक हिन्दी-मासिक बर भी निरालत थे। मेरे साथ मेरे मित्र कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन (अब स्वर्गीय) भी थे। जैनजी ने अपने प्रेम-मन्दिर (आरा) में 'प्रेमरत्नी' 'प्रेम पुष्पाञ्जलि' 'विदेगी', नेत्राधर्म आदि सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित की थीं। वे पुस्तकें बरी के इदिवन प्रम में बड़े आकर्षक ढंग में छपी थीं उन पर शास्त्रीजी की सम्मति की आवश्यकता थी। शास्त्रीजी उन पुस्तकों को

वर्षाव्य भाषाव्य चन्द्रोच्चर घात्रो

देखकर हैमन्त-हंसते कहने लगे "भाब बीमबी घात्रो के उप-काल में
 चारों ओर प्रेम-मुष्णों की मुग्ध बड़े बेम से फैल रही है—जान पड़ता है
 कि मध्याह्न हास-होते यह मादक गन्ध नई पीढ़ी को मदान्ध बना देयी—
 मापको साहित्य-सभा करने का बमुदाय ईश्वर ने दिया है तो रामायण
 महाभारत आदि को हिन्दी प्रमिया तक पहुँचाने का प्रयत्न कीजिए ।

जननी उनका मुँह ठाकने लगे । वह (गान्धीजी) दा दूब बात कहने
 म बड़े निर्भीक थे । स्पष्टबादिना भी उनकी एक बिशपता थी । वह जैनजी
 का हस्तोन्माह देकर भी कहते ही रहे, 'मनुष्य को प्रेम मिलाने की
 आवश्यकता नहीं है वह सामारिक प्रेम में अत्यन्त निपुण है, उस परमार्थ
 और परमात्मा के प्रेम की ओर प्ररित करने की आवश्यकता है ।

जैनजी ने मन्त्र स्वर में निवेदन किया कि यही सम्मति लिखकर
 देने के लिए सम्मति प्रदान करना मरी प्रकृति के विरुद्ध है । मेरा मत
 है कि सबसे पहले अपने देश के प्राचीन साहित्य का उद्धार और प्रचार
 होना चाहिए तथा उसी के आधार पर नये साहित्य की मूटि करनी चाहिए,
 फिर शून्यता के दोषोपेय से बचने के लिए अन्यत्र के साहित्य
 का अपनामा चाहिए । प्रेम और सेवा पर जो साहित्य मापने (जैनजी ने)
 प्रकाशित किया है उसमें अपिकास विरेयी सामग्री है । क्या मापको
 ला है कि भारतीय साहित्य में प्रेम और सेवा पर जो सामग्री निक
 सकती है, वह अन्यत्र नहीं ?

जैनजी मौन हो रहे । एक घात्रोजी ने मेरा परिचय पूछा । वह यह
 जानकर बड़े प्रसन्न हुए कि मैं भी उन्हीं के बिके (घात्रोबाद) का निवासी
 हूँ । उन्होंने यह उपदेश दिया कि हिन्दी-लेखक बनना चाहते हो तो
 संस्कृत नूब पढ़ो । मैंने जब कहा कि संस्कृत की प्रबन्ध पढ़ीला पास कर
 चुका हूँ तब बड़े चार से हँसकर मरी पीठ ठोकते हुए बोले कि तुम बड़े
 मोले जान पड़त हो । जरे मैं तो साहित्याचार्य होने पर भी यही समझता
 हूँ कि अपनी संस्कृत-महासागर को दूर से ही तरंगित देख रहा हूँ उसमें
 प्रवेश करना तो दूर, उसके लट तक भी नहीं पहुँचा हूँ ।
 उनकी यह बात सुनकर मेरा चेहड़ा चतर गया । मैंने कहा कि मैं

संस्कृत पढ़ना चाहता हूँ। बोलें 'तुम्हारे छट-बाट से संस्कृत पढ़ने के कलम नहीं प्रकट होते। तुम बाक सँभारे और पाठ खाये हुए हो। तुम्हारे बूटे बमकते हैं, तुमहकी कमानों का बरमा है—ये सब अक्षय संस्कृत सीखने के नहीं हैं। अंग्रेजी-धरती की तरह संस्कृत नहीं सीखी जा सकती। उसके लिए कठोर साधना की आवश्यकता है—संस्कृत के विद्यार्थी को बह्यधारी और संयमी होना चाहिए, वह ऋषियों और स्वामी-उपस्थितियों की माया है। विद्यार्थियों से वेदवाणी की पट्टी नहीं बैठती।'

उसके वे मामिष अथ्य भाव भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। मैं इत प्रम हो गया। पहाड़ के पास पहुँचकर ऊँट अपनी ऊँचाई भूल गया।

वंदित रामजीलाल शर्मा आर्यसमाजी थे। वह पहले इंडियन प्रेंस में 'सरस्वती विभाग का काम करते थे। फिर स्वतन्त्र रूप से प्रथम लोकतर विद्यार्थी मिशनमें लगे और स्वावलम्बी बनकर अपने अध्यक्षताय क बल से बहुत उन्नति कर गए। अपने देश के विद्यार्थियों के लिए उन्होंने प्रचुर उत्साहित्य प्रकाशित किया। शास्त्रीजी के बाद वह भी हम लोगों को सीख देने लगे। उन्होंने ब्याजन्व सरस्वती के आदर्श जीवन से शिक्षा ग्रहण करने की सलाह दी। शास्त्रीजी सनातनधर्मी थे। उनकी स्वामिभक्ति विनोदप्रियता हुकसी। बोलें 'तुम लोग मेरे मित्र शर्माजी की बात मान कर स्वामीजी के आदर्श से अवश्य पाठ सीखो क्योंकि इन्होंने भी स्वामी के सिद्धान्तों के अनुसार कोट-पठभूज धारण किया है और एक पक्षी युवती की शक्ति करके उससे विवाह किया है तथा एक अज्ञतयोगि विषया का पुनर्विवाह करने के लिए अपने परिवार के एक युवक को प्रेरणा देकर उत्साहित कर रहे हैं। तुम लोगों की बेधभूया से इनको पता लग गया कि तुम लोग विवाहित हो नहीं हो वे अपना रसायन सिद्ध करने के लिए टोक-पीटकर बैठराज बना लेंगे। आजकल इन्होंने यही पन्था उठाया है कि मनबल सबयुवकों को देखकर विवाह-विवाह के लिए पल पर डोरा डालते रहते हैं।

वे लोगों मित्र हूँसने लगे और हम लोगों मित्र कहीं से चल पड़े। जनजी उस समय पमुना क पुरु के पासवाले ईसाई मिशनरी कॉलेज में पढ़ रहे थे। उन दिनों उस अमेरिकन मिशन कॉलेज में विद्यार्थियों को

इसकी स्वतन्त्रता प्राप्त की कि जैनजी सिन्हाइसिफवा-इन्स्टीटूट में पुस्तक-प्रकाशन-सम्बन्धी साठ कार्य स्वच्छन्दतापूर्वक करते रहते थे। वह अपनी बुद्धि के बड़े पक्के थे। उन्होंने इंडियन प्रेस के बड़े मालिक बाबू बिन्तामणि बोस के स्वप्न सुभ्रुव पोरी बाबू (जब स्वर्गीय) द्वारा पंडित रामजीठाक धर्मा को पत्र लिखवाया कि शास्त्रीजी की सम्पत्ति प्राप्त करने में सहायक हों। और भी बनेक सूत्रों का सहाय किया। किन्तु शास्त्रीजी पर उनके ऐसे धुनी की भी कोई कला न लगी।

शास्त्रीजी की सेवा में दूधपै बार उपस्थित होने की बटना बटका में हुई। पटना इत्रसिए कि इस बार भी अपने एक साहित्यिक मित्र के साथह से उनके पास गया। मित्र महाशय से अलिख भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के मंत्राप्रसाद-वार्त्तियोपिक की प्रतिरोधिता में अपनी एक पुस्तक मेरी पी जो बाँचने के लिए शास्त्रीजी के पास आई थी। उन दिनों देखने लाइन के पास शास्त्रीजी अपने मोसाबन्धु बाधम में रहते थे। सादरी और सञ्चर्य से सचमुच वह बाधमतुख ही था।

मेरे मित्र को देखते ही वह ताड़ गए। उनकी प्रसन्नता का पुरु बाँचने लगे। वह भी शास्त्रीजी का भाव भाँप गए। दोनों को आपस में अच्छे निपटते देख मैं मन-ही-मन हँसकर चुप रहा। शास्त्रीजी उनकी ओर इशारा करके मुझसे कहने लगे "आपके साथ तुम्हारे जाने की कोई भाव स्पष्टता न थी। इनको मैं चुप पहचानता हूँ। उन्होंने पहले कभी मेरी कुटिया को इत्यार्थ नहीं किया था मात्र मेरी सौपड़ी पत्रि हुई—मगवान् ही इनका मनोन्व सफल करने।

इसके बाद शास्त्रीजी ने मुझे बतान ले जाकर बताया की कि फिर कभी ऐसी भूर्त्ता न करणा—मैं कभी किसी की सिप्यरिष नहीं सुनता। मंत्राप्रसाद-वार्त्तियोपिक की बर्त्ता तुम नहीं सक्जते। बाटुकार को उनी के बहुक्य पुरस्कार मिलता है। तुम अपने मित्र को ममता दो कि अपने भाष्य पर सरीषा करें अपनी योग्यता पर नहीं।

मेरे मित्र ने उन्हें में एकान्त की बात पूछी और मैंने यह भी ही। वह बिना तो थे ही शास्त्रीजी के कपन का अधिभ्य समस परचात्राय करने लगे।

तीसरी बार शास्त्रीजी 'मत्तबाका'-कम्बळ (कम्बळता) में स्वयं पचारे। नये बचन, कम्बळ बोड़े प्रात काक पहुँचे। अपनी लिखी हुई पुस्तक 'दरिद्र कथा' की पान्हुक्तिपि भी छाप ले गए थे। उसे स्वयं छपवाना चाहते थे। एक कक्कतिवा प्रकाशक ने उस प्रकाशित करने का उन्हें बचन दिया था पर उसने बिगड़ता प्रकट कर दी। शास्त्रीजी कहने लगे भाव और होते ही एक छपन का मूँह देखा था इसलिए जहाँ भाषा पूरी होनेवाली थी वहाँ मैं नकार का चिह्न हो गया और वही पर मैंने उस नकारने-वाले तथा चिह्न होनेवाले अपने-आपको नमस्कार किया क्योंकि मुझ जैसे निरीह को नकार मुनानेवाला तो नमन के योग्य है ही उसके समान नमस्कार के नकार का चिह्न होनेवाला मैं भी नमस्कार ही हूँ इसी कारण मैंने वहाँ 'धिपंचाक्षर-स्तोत्र' के दो श्लोक उसके सामने ही मुनाकर अपनी प्राणि व्यक्त कर दी

नापेन्द्रहाराम विबोधनाय
 भस्मांगरायाय महेश्वराय ।
 नित्याय शुद्धाय विमम्बराय
 तस्मै नकाराय नमः शिवाय ॥

शिवाय पीरीवदनाम्बबुन्दमुर्व्याय वसाध्वरायकाय ।

श्रीनीलकण्ठाय कृपाम्बजाय तस्मै चिकाराय नमः शिवाय ॥

अब इस 'दरिद्र-कथा' को 'चन्द्रसेखराय' संकल्प करके स्वयं ही प्रकाशित करने का दृढ़ निश्चय किया है। चाहता हूँ कि इस छोटी-सी पुस्तक को एक ही सप्ताह में छपवाकर उसे बन-भराग्य प्रकाशक के पास पठवा दूँ—वह भी एक दरिद्र छात्राय का साहस देख ले।"

सचमुच उन्होंने पुस्तक की पाँच प्रतियाँ उस प्रकाशक के पास यह लिखकर भिजवाई, "आपके नकार को दूर से ही नमस्कार।"

जब मैं कारी में रूठा था तब शास्त्रीजी भी वही थे। शास्त्रीजीय रामायण का हिन्दी-अनुबाद कर रहे थे। वहाँ के एक प्रकाशक ने उसे छाप छत्रों में निकाला था। उन्होंने श्रीमद्भागवत् और महाभारत का भी हिन्दी-अनुबाद किया था परन्तु पूरा न कर सके। रामायण की तरह महाभारत में भी मूस के साम अनुबाद छपा था। महाभारत की मासिक

बच्चों के रूप में स्वयं प्रकाशित करते थे। मैं भी उसका पाहुन था। उनके निधन के बाद उनके ज्येष्ठ सुपुत्र पंडित प्रफुल्लचन्द्र बोसा 'मुक्त'जी भी महाभाएल को उसी रूप में फिर कुछ दिनों तक निकालते रहे। वह काफ़ी पूँजीवाला काम था। शास्त्रीजी ने अपने गृहस्त्री को साधन सम्पन्न बनाने के उद्देश्य से कभी इधर-उधर पर ध्यान ही नहीं दिया। स्वागी तो उनके सहस्र हिन्दी-जपन् में कम ही हुए। त्याग और तप ही उनका बसोबास था।

एक बार उन्हें रोप-सभा पर देखने के लिए स्वामी सत्यदेव परिवाराजक साथ और चुपके-से कुछ दिवसों उनके निरुद्धान उद्योग के भीच रख गए। शास्त्रीजी को पता चला तो तुरन्त स्वामीजी के पास सम्पन्नबाद लौटा गये। अपने बच्चों की प्रति क लिए उन्होंने कभी किसी मित्र की भी आधिक सहायता न चाही और न की। ऐसी बात वह सोचते तक न थे। प्रयाग में जब अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साहित्य-मन्त्री थे तब अपने दूरस्थ भावसंगृह से सम्मेलन-कार्यक्रम तक जाने-जाने के लिए कभी इकन-भाड़ा नहीं लेते थे। राजपि टण्डनजी उनको माई मानते-कहते थे पर टण्डनजी के साथ ही से भी वह अपने सिद्धान्त का लक्ष्य नहीं देते थे। वह अपनी स्थिति को प्रभु की देन समझकर उमर सम्पूर्ण ही रहे। आजीवन परिस्थितियों से सह्य संघर्ष करते रहे गए। कठिनाइयों से जूझते समय भी उनके चहुर पर कभी विषाद की रेखा नहीं बीच पड़ी। कामी में बोलम्मा के पास मोतीकटप में उनके निवास-स्थान पर एक रात मैं मिलन गया तो वह नियमन ठेक की डिबटी पकड़कर बग्लाही मौन रहे। मुझे देखकर हँसते-हँसते पूछने लगे 'तुमने कभी यह मुकर्म किया है या नहीं? सदृशस्य का पारिवारिक सेवा में संकाच न होना चाहिए, गुरुवर्यों के समीप रहकर संस्कृत पढ़े बिना यह सेवा-प्रणाली अम्यस्य नहीं हो सकती। तुम्हारे हिन्दीवाले बाबू कल सिधियों की बड़ी कुरसा कर रहे हैं—यत्र-यत्रिकार्यों में मति-मति की माधमगी में भरे चित्र छप रहे हैं कोई खड़ी है, कोई बटी है, कोई सोई है कोई हँसती है, कोई प्रतीक्षा करती है, कोई बीजा बजाती है, कोई

अभिचार करती है—क्या यह चिन्तों का ऐतिहासिक है या ममत्वदीता का मिथ्या-प्रचार का मूर्तरूप है ?”

भास्त्रीजी के सरस विनोद बड़े आनन्ददायक होते थे । बाँटें करते समय दूसरों को ‘मासिक’ और अपने को ‘मयवान्’ शब्द से अभिहित करते थे “कहिऐ मासिक आज ‘मगधान’ का एक काम कर डीजिएया !”

पण्डित सफसनायकधर्म धर्मा और पण्डित ईश्वरीप्रसाद धर्मा के साथ भास्त्रीजी ही लक्ष्मीविकास प्रेस (पटना) की साप्ताहिक पत्रिका ‘धिया’ के सम्पादक हुए थे । उनकी ‘भारतवर्ष’ नामक पुस्तक उषी प्रेस से प्रकाशित हुई थी । उस प्रेस के स्वामी और ‘धिया’ के सञ्चालक राम महादुर रामरत्ननिजयसिंह (बबुआजी) उनका बड़ा सम्मान करते थे । उनकी निस्पृहता और चिरप्रसन्नता सबसे बरबस उनका आदर करती थी । वह सच्चे धर्म में एक मस्तमौला फकीर थे । निरान्त निरभिमान होते हुए भी सदा स्वाभिमान एवं सन्तोष के साथ दुःख को लेकते रहना उनका अण्मजसत गुण था । उनकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता किसी के लिये रहने की परवाह नहीं करती थी । बमारों के बारे में उनके धर्म को कभी बिगा न सके । एक बार महाप्रसिद्ध प्रेस (काशी) में प्रसिद्ध कथाकार कौशिकजी से बाँटें करते समय उन्होंने हँसकर कहा था कि कठिनाइयों-आमिनिमाँ अपने पादमंजीर की रतमून मुझे सुनाती रहती है तो कौशिकजी मौन होकर उनका अस्वस्थित मुकड़ा धूरने लगे और अन्त जाने पर इस वाक्य को बुहुरते हुए धूमने लगे ।

जब मैं प्रयाग के इंडियन प्रेस की अतिविभागा में रहकर काशी भावपी प्रचारिणी समा की ओर से द्विबेदी-अभिनन्दन-शब्द छपवाता था भास्त्रीजी से उस शब्द के लिए एक लेख माँगने गया । उन्होंने पुण्य आचार्य (द्विबेदीजी) की साहित्य-सेवा और संस्कृतज्ञता तथा उनकी पुस्तक ‘आशिदास’ की निरंकुशता पर अपने प्रसंसात्मक और धर्मीशात्मक विचार व्यक्त करते हुए एक संस्मरणात्मक लेख लिखन का बचन दिया । मैंने लेख देने के लिए फिर आने का समय पूछा तो हँसकर बोले कि अपनी अज्ञानि लेकर मैं ही स्वयं जाऊँगा और सचमुच दूसरे ही दिन आने भी । सब्ज उनका छोटा ही था—‘द्विबेदीजी की एकनिष्ठ वाचना—पर

उसे देखकर 'सरस्वती-सम्पादन' पत्रित दबीपत शुक्ल कहने लगे कि रंग में जैसे केशर की भीनी-भीनी सुवन्म बोलती है, वैसे ही शास्त्रीजी के लेख के धीरे-धीरे में उनकी 'एकलित' साधना बोल रही है। अब जान पड़ता है कि बही साधना का युग लय गया।

शास्त्रीजी संस्कृत-शिक्षा के ह्रास पर प्रायः खेद और चिन्ता प्रकट किया करते थे। कई विश्वविद्यालयों (पटना काशी पञ्जाब आदि) में वह संस्कृत की उच्चतम परीक्षाओं के परीक्षक थे। उत्तर-गुणितकारण देखकर झुंझका उठते थे। 'साक्षात्' और 'शिक्षा' में इस विषय के कई लेख उन्होंने लिखे थे। संस्कृत और हिन्दी दोनों ही भाषाएँ बहुत सरल लिखत थे। रामायण-महाभारत की टीकाएँ भी सुगम भाषा में लिखी हैं। वह मनसा-बाधा-कर्मणा धरलता भाव भी स्मृति का पुष्कित और चिर को अदायगत करती है।'

• लेखक धारुवर-नवम्बर १९२६

प्रकाशन : नवम्बर, १९२६—वास्तविक 'मोल्ता' (द्वितीय प्रकाश), पटना।

स्वर्गीय कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय

राष्ट्रभाषा हिन्दी की एक विशेषता यह भी है कि उसके साहित्य-सेवकों में भारत के महिन्दी भाषी प्रायों के विद्वानों के नाम भी मिलते हैं। ब्रिषिणी मराठी पुनराठी मराठी पंजाबी उडिया असमिया आदि प्रमुक्त भाषीय भाषाओं के विद्वान् पहले भी हिन्दी-सेवा कर चुके हैं और आज भी कर रहे हैं। यहाँ प्रसंगगत केवल बंगभाषा-भाषी हिन्दी-सेवकों के सादर स्मरण से ही प्रयोजन है।

बंगाली हिन्दी-सेवकों में मनीनचन्द्र उय पंडित बजरत्न मद्राचार्य श्रीमती बंगमहिषा बाबू पिरिजाकुमार घोष पंडित अमृतकास बरबर्ती बाबू डारकागाय मैत्र श्री मस्तिमोहन सेन डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्य आदि के नाम हिन्दी के साहित्यिक इतिहासों में प्रकरानुसार पाए जाते हैं। साहित्यमर्मज्ञ सज्जन उनकी साहित्य-सेवा से परिचित भी हैं।

बिहार में भी अतीत युग में बंगाली हिन्दी-सेवक हुए हैं और आज भी हैं। पं० ब्रूरेष मुखोपाध्याय एम० ए० आज तक हिन्दी-साहित्य की सेवा में संलग्न हैं। 'माधुरी' (कलकत्ता) में छपे उनके कई निबन्ध उनकी विद्वत्ता के प्रमाण हैं। ऐसे बंगभाषी साहित्यकारों का उल्लेख न यहाँ सम्भव है, न अभीष्ट ही।

कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय छपरा (सारन) के निवासी थे। उनके पूर्वज अठारहवीं सदी में ही बिहार आये थे। उनके पितृव्य श्री भवानी चरण मुखोपाध्याय ने उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में छपरा से 'सारन मरोज' नामक हिन्दी-मासिक पत्र निकाला था जिसके सम्पादक स्वनाम धन्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास थे। इस प्रकार उनकी अपनी बंश-परम्परा से ही हिन्दी-श्रेम प्राप्त हुआ था। मुझे अपने कसकत्ता-प्रवास के समय

उनके साहचर्य का मुस-नीमाय्य प्राप्त था। वह वही 'भारत-मित्र' हिन्दू पत्र 'विजय' 'दारोगा-रफ्तार' 'बिस्तुरी' आदि पत्रों के सम्पादन का काम करते रहे। वही सहकारी रहे और कहीं प्रधान। पत्र के प्रधान सम्पादक पं० ईस्वीप्रसाद घर्मा के आकस्मिक निधन के बाद वही उनके स्थान पर काम करते लगे। रफ्तार के ही वही मुख्य सम्पादक थे।

जिस समय वह थी बीकानेर के हिमा के बहिनक प्रेम में छायाहिक 'विजय' का सम्पादन करते थे उस समय में ही उमी प्रेस के सचिव मासिक पत्र 'उपन्यास तरंग' का सम्पादक था। सम्प्रा अथकाय हान पर आग्रहपूर्वक अपने घर लगे आठ और स्वयं 'धमका' ठरकारी तथा आजा गुमा खस्ता परतों बनाकर बिलाले। पान खान और बनाने के भी बड़े धीकीम थे। पान की सेवा करने में उनकी जैसी समन थी बीवी केवल पं० किशोरीनाथ गोस्वामी में ही देखने में आई। प्राठ-कासीन स्थान ध्यान के बाद सबसे पहले पान और उसके भसाले के मुबारने-सुबारन म ही लग जाने थे। बीड़े से मय दिम्बा लेकर ही किसने-पत्रों में बैठते थे।

नाशुक्तिपि और प्रक के संघोपन में वह योग परिधम करते थे। इन कार्यों में वह अत्यन्त निपुण माने जाते थे। पों द्य तो वह बनेक कार्यों में थे। रसोई बनाने से लेकर सुपन्थिठ ठेक और साबुन बनाने तक में उनकी कुशलता देख इन रह जाना पड़ता था। करने पर कपड़े बुनना कागज और बस्ती बनाना पड़ी-बूटियों की बाटिका में तरह-तरह के पीचे अनाना नाना प्रकार के औपय तैयार करना मिट्टी के बिलीने पचना आदि उनके बरेहू उद्योग-बन्धे थे। बनेक प्रकार की अर्थकारी विद्या वह जानते थे। बीकानेर के अस्थित पिनों में अपने घर रहते समय पृथक्कीर अयोग ही उनकी जोषिका का आचार था। किन्तु ही स्वदेवी प्रदर्शनियों में वह कुटीर-मिस्त्र की बस्तुएँ बनाने और प्रदर्शित करने के लिए बुलाए जाते थे। उनके हस्त-कला-कौशल का वनेष्ट विवरण देना शक्य नहीं है।

कलकत्ता में रहते समय तो उनके सत्संग के अवसर मिलते ही रहे जब में अंगरा पत्रेन्द्र कॉलेज में था तब भी उनसे बराबर मिस्त्रा-मुक्ता रहा क्योंकि मरा और उनका निवास-स्थान पाष-ही-पाम था—येच रतनपुर में और उनका काकीबाड़ी में। उनके घर में जयवनी दुर्गाजी का मन्दिर

वा इसलिए काभीबाड़ी कहलाता था। उनके दरबारों पर रबमात्रा का विद्यालय रच देण मने एक बार पूछा था बोले कि मेरे आंगन का वह काली-मन्दिर और मम्म रच मेरा पतृक बन है। उनके पूर्वजा म कई ऐसे सिद्ध पुरुष हो चुके थे जिन्होंने तन्त्र-मन्त्र की विधि से समाज में बड़ी प्रतिष्ठा और सम्पत्ति अर्जित की थी।

उनका धार्मिक सौन्दर्य बड़ा आकर्षक था। उनकी रमणीय मुखाकृति और बड़ी-बड़ी आँसों दर्शनानन्दबर्षक थी। हिन्दू पंच' कार्याक्रम में प ईश्वरीप्रसादकी उनसे मजाक में कहा करते थे कि ब्रह्मा ने सतार में आपके मनोहर रूप को पुर्यावरण में भेजकर बहुतेरों को प्रेम-सकट से बचा दिया नहीं तो यह बल्ले कितनी ही दुर्बलमार्ण हो जाती। तब पूछिए तो उनका हृदय और स्वभाव उनके रूप से भी अधिक सुन्दर था। वह केवल अपने छाहकर्मियों के ही सुहृद न थे जो कोई उनके सम्पर्क में आता वह उनकी विनयधीनता और मिठनसारी से प्रभावित हुए बिना न रहता।

उन्होंने लगभग तीस बय तक नियमित रूप से हिन्दी-सेवा का पत्र निबाहा। लगभग तीन दर्जन पुस्तक भी लिखी जिनमें इतिहास जीवनी पौराणिक आस्मान साग माजी की खेरी दस्तकारी कथा-साहित्य आदि अनेक विषय सम्मिलित हैं। अंग्रेजी और बंगला से हिन्दी-अनुबाद करते में वह बड़े सिद्धहस्त थे। श्री रामलाल वर्मा ने अपनी बर्मन कम्पनी से 'सम्पन्न-रहस्य' नामक पुस्तकमाला बड़ी सजबज से प्रकाशित की थी। उसके कई लच्छों का अनुबाद जार्जिक बाबू ने अंग्रेजी से ही किया था। उनकी पुस्तकों में अधिकतर सजब कम्पनी से ही प्रकाशित हैं। 'बारोगा दस्तर' बामुसी मासिक पत्र था। उसके लिए तो उन्हें सर्वद्व अंग्रेजी और बंगला से ही अनुबाद करके मसाला पुटाना पड़ता था। इन दोनों मापारों के कई बामुसी और रोमाबक उपन्यासों का भी उन्होंने हिन्दी में अनुबाद किया था जो अधिकतर सजब कम्पनी से ही निकसे थे। हिन्दू पंच' विषय 'बामुसी' आदि स्वसम्पादित पत्रों के लिए वह जो सम्पादकीय अटलेस और टिप्पणियाँ लिखते थे उनमें भी सामाजिक राजनीति की समस्याओं पर बड़ी निर्भीकता से अपने विचार व्यक्त करते थे।

उनके सिन्धे मसर बड़े मुड़ील और मुबाध्य होत थे । अजिठ घन के सदुपयोग की भावना से ही वह मिठप्यमी थे । घर में ही लिफाफा मित्र स्याहीसाह कागज बिट्ठी लिखने का कामज कसम कपड़े रंगने के रंग जादि बना सते थ । साहित्य टिल्पी थे ही बनेक उपयागी कसाबों की बस्तुओं के मी टिल्पी थे । ऐसे प्रवीण कसाकारों की क्रीति रना की उपेक्षा टिल्पी के सिम् बड़ी टिटपाती पिइ होमी ।^१

१. लेखन १५ जनवरी १९६०।

प्रकाशन जनवरी १९६०—मासिक 'सुगान्दर' (बीकानेर निरीक्षण),
हरिवा (बिराट)।

एक बार की बात है कि पंडित स्वनामधेय पाण्डेयजी का मिथजी ने एक बेहाली नौकर का दिया था। उसके विषय में एक दिन पाण्डेयजी से मिथजी ने पूछा कि कौता काम करता है। पाण्डेयजी बोले 'वह (नौकर) ता मेरे तकने में तेक-माकिश करते समय सितार बजाता है। सितार की सुन्धारियों पर बँबुलियाँ नवाने की तरह मेरे तकने में बीर धीरे मुषमुवाता भर है। मेरी तो ठबीयत नपुसक पठि की मुकठी सुन्धी पत्नी की तरह झुंझला पळ्ठी है। इस पर भी मिथजी उमी दिन की तरह इतना हँसे कि सामने की मेज भी पीक की बौछार से न बच सकी। पाण्डेयजी सदा अपने तर पर रहकर ही सम्पादन-कार्य करते थे पर जब कभी कार्यालय में जाते थे मिथजी के साथ कुछ दान विमोह कर ही लेते थे। दोनों ही सरस-सूक्ष्म साहित्य रचिक थे मत उन दोनों के आस-पास के लोग भी उनके हाथ सदा आनन्द का ही अनुभव करते थे।

एक बार तो मिथजी इतना अधिक हँसे कि कुर्बटना हो गई। हँसते हँसते आँखों को पोंछने के लिए चपमा उतारकर कमास से उठ साठ करने लगे। इतने में हँसी के वेग से हिलक हुए हाथों से चपमा छुटकर फर्श पर जा गिरा और दूर हो गया। तब भी कुर्सी पर उनकी देह हिल कुछ रही थी। हम हँसनेवाले तो बचकचाकर मँस हो रहे।

बात ऐसी हुई कि बातचीत के सिक्कसिसे में एक मध्य एता जा गया जिसका बर्ष मुनकर मिथजी कुले दिख से हँसने लग गए। 'मामुठी कार्यालय अमीनाबाद पार्क से सादूर रोड में चला गया। वहाँ सम्पादन विभाग में प्रेमचन्दजी की कारी से जा गए। उनसे मिलने के लिए उर्बू के साहित्य-सेवी प्राय जाते रहते थे। एक मौजवान घायर उम विन जा गए, जो बड़े लुबमूरठ और चौकीन भी थे। उनसे चले जाने पर पं० बिहारीलालजी गुजरती ने प्रेमचन्दजी का उनका परिचय दिया जिससे प्रेमचन्दजी भी अट्टहास कर उठे।

गुजरतीजी पुस्तक प्रचारक थे। बातें करन की कला में बड़े निपुण थे। गमियों में मामुठी तनीलाल गायन जादि पहाड़ी नगर में ही बहुत जमाए रहते थे। राजा-रईनों और तासकेदारों का बखार करक उन्हें नहानी-उपन्यास की पुस्तकें पढ़ने की देना उनका आम काम था। उनकी

कन्नडकी उन्नत और कन्नडकी तबीयत रईमों तथा मेरों को बरखम ठिमा सेनी थी। इसी हुंमर की बरीम्न बहु पुस्तक-प्रचार में काशी सफलता पा लेंते थे। पहाड़ी नगरों में मीत्र करने के लिए जानेवाले मनी मोरी भागों के बारे में बहु तरह-तरह के टिप्पे सुनाया करते थे।

उस दिन मुजरातीजी ने जो पत्रबन्ने पापर का किम्सा सुनाया उसका सम्बन्ध एक नवाब माहूब म भी था। बही उसके भायक थे। उस किस्म में आय हुए 'होमसी-टेक' शब्द पर ही प्रेमचन्दजी टाका होंस पड़े थे। उस सण तक मियजी की जीर हँसी की कहर नहीं मारी थी। जब प्रेमचन्दजी की प्रेरणा से मुजरातीजी ने उन्हें शब्द की व्याख्या सुनाई तब सम्भार्य का भाव समझकर बहु हँसने-हँसने लोट-पोट हो गए। उनी हसी के मकरे में चरमा चकनाचूर हुआ।

मियजी को भद्रता और निष्टता का बहुत ध्यान रहता था। बहु पदे-पदे खीजग्य की मर्वादा का पालन करने में उत्पर सीमते थे। बहु बनी फलतू बात नहीं करते थे। हँसने भी थे तो मर्वादिह इन स। बसने भी थे तो रईमी बाल। उनके किसी काम में उतावली नहीं थी। संयत भाव म ही सब काम करते थे।

मियजी मीठापुर (अवध) जिले के सिपीकी रौपीली स्पाम के निवासी थे। उनके पनी पूजक सन् १८१७ के मैनिक बिद्रोह में सक्त बन्द में बर्ही जा बस थे। मिय-बन्धुजों ने अपने 'मियबन्धु-बिनोद' नामक प्रसिद्ध शम्भ के तृतीय भाग में मियजी के पूजकों का वृत्तान्त लिखा है। मियजी अपनी बंध-परम्परागत परिपाटियों को रला करने रहने में बड़े सजम रखा करते थे। पहले उम्होंने मीठापुर में बकाळत की मुक की थी पर माहिल्य-सेवा में बाबा पड़ने देह बहु एकमात्र माहिल्य क ही हो रू। उसको नौकरी करने की माकम्यबता भी न थी। पर पर काशी स्थावर सम्पति की मुन्दर मकान और आम का कन्म बाव था। कन्नड में तब मनीहाबावी और कच्छा बागों की प्रथम बकली थी तब बहु अपने मित्रों को भी अपने बाग के मीठे आम खाने का आमन्त्रित करते थे। उनका मिषाय-म्बान एर तास्टूनेदार की रियासत का टाट-बाट प्रसिद्ध करता था। पंदिन मपनापयम पाण्डेय और थी

पत्राधिकारी थे। वह मुझे नागपाल में लिखने के लिए कुछ काम दिया करते थे। उसक लिए पैसे भी दिसवाते। दफ्तर में भी गेज की बाहरी कामदानी से कुछ हिस्सा मिलता ही था। उन दिनों कचहरी (अबकी बाजार) से कम्पनी बाग (ना० प्र० सभा) तक या बेनिया-बाग (मोवर्न सचय) तक की सवारी एक-बैठ जाता एका-भाड़ा लपता था। मैं दोनों जगहा का चक्कर काटा करता। बाग-महलान तो किसी से भी नहीं। दूर से ही बागू स्थामन्दिरबास को 'समा' में बैठ लेता और कभी 'प्रसादजी' को भी उनके घर जाकर। अपना परिचय मैं कैसे देता ? संकाय के मारे साहस न होता था।

मैं रहता था सचूरी मुहम्मद में—कचहरी से थोड़ी ही दूर—उपर्युक्त मुनसरिम साहब के घर पर। मेरे बड़े सार्व ने व्यवस्था करा दी थी। वही प० अम्बिकाप्रसाद बैद्य भी रहते थे। वह मिर्जापुर के निवासी थे। वह प्रायः मारतेनु-सदा प्रेमचनजी की चर्चा किया करते थे। वह साहित्यिक न होने पर भी साहित्यानुयायी होने के कारण प्रसादजी को भी जानते थे। मुनसरिम साहब बिस्वविख्यात ज्योतिषाचार्य प० सुभाकर द्विवेदी के गोष्ठिया दायार थे। इसलिए बैद्यजी कभी-कभी ज्योतिषीजी के घर से हिन्दी-मन-परिचय लाया करते थे। उन्हें मैं राती-रात पढ़ सकता था। 'समा' के बाचनालय में थोड़ी ही दूर ठहरने का समय मिलता था क्योंकि राता बहुत दूर या अतः पढ़ने की भ्रम नहीं मिलती थी।

मैं बाघ की नायरी-मचारिणी-समा में ही 'इन्दु' देल चुका था। सम्भवतः वह मन् १९१० में ही निरमा था। उन दिनों उसकी बड़ी प्रसिद्धि थी। काशी में रहने समय 'इन्दु'-कार्यालय देखने की बड़ी उत्सुक हुई। 'समा' के बाचनालय में एक पाठक से परिचय हुआ। उनका नाम मजराह नहीं। बड़ी पक्क-प्रबलक बने। उस समय मन में विभिन्न बुरतुहक था। दयनोत्सुक्य के सिवा कोई कामना न थी। पूर्वोक्त भी राधाकृष्ण की प्रेरणा से 'प्रसादजी' का घर देग चुका था। किसी दिन 'समा' की मार न जाकर 'प्रसादजी' के घर की ही परिचय करवाया था। उस समय प० अण्णासयण पाण्डयजी भी 'प्रसादजी' के यहाँ रहते थे। वह भारत-वर्ष

महामण्डल की मानिक पत्रिका 'निवसागम बन्धिका' का सम्पादन करने से । उनकी भी पढ़ने-पढ़ल बड़ी देखा ।^१

२

राष्ट्रमाया हिन्दी के साधुनिक महाकवियों में काशी के भी जयशंकर 'प्रसाद' का विचित्र स्वाम है । कवि के अतिरिक्त वह नाटककार, कथाकार निबन्धकार और उपन्यासकार भी बड़ी उच्चकटि के से । साहित्य की इस शाखाओं का पन्तबाम्बित और पुनः-पुनः-सम्पन्न करते रहते अपने कल-कृमि से भी जीवन्त किया । यद्य और यद्य क्षमों में उनकी भाषा प्रायः संस्कृतनिष्ठ है । उनकी सभी रचनाओं में भारतीय संस्कृति की मत्ता-महता सलकती है । वह ऐसे कला-भुम्भस राख-घिम्पी से कि उनके गद्य में काव्य की उन्म दीन पड़ती है । भारतीय सम्पत्ता के प्रति उनकी सहज स्वाभाविक मत्ता थी । उनकी कितनी ही रचनाएँ भारतीय विषय विषयों की पाठ्य-मुस्तका के रूप में नई पीढ़ी के लिए अभ्ययन-अनुशीलन का माध्यम बनी हुई हैं । जैसे कविताओं में उनकी सुकुमार भावनाएँ और कमनीय कल्पनाएँ उनकी पम्पीर चिन्तनशीलता तथा काव्य रमबाय में उनकी सुस्तीनता का परिचय देती हैं वैसे ही उनकी गद्य-शैली में टौर-टौर हृदयसाहिष्ठी सुक्तिर्या भी मिलती हैं । उनकी प्रक्रिया के प्रसाद से हिन्दी बहुत अधिक गौरवान्भित हुई । किन्तु बिग व्यक्ति न साहित्य की सेवा महिमा-मणित किया बड़ी जयन जीवन्तकाल में हिन्दी के हिमायनी कहे जाने वालों से साहित्य और विद्यादित भी हुआ । इस निर्मम बचन की बड़ी परम्परागत रीति है ।

'प्रसादजी' महान् साहित्यकार के अतिरिक्त और भी बहुत-कुछ थे । उनकी स्मृति-शक्ति बिलक्षण थी । उनमें स्वराष्ट्रीय गुण भी पर्याप्त मात्रा

१. मूल शोधक : 'कविशर मम हरी के सुगरल' ।

संख्या १६ जनवरी, १९२५ ।

(जयशंकर, मृत) ।

में था। वह अनेक कलाओं के मर्मज्ञ थे। काशी की विशेषताओं का भी विद्यार्थी था। विभिन्न व्यवसायों की पारिभाषिक अवधारणा का अर्थ उनके पास भरपूर था। बहिरक बाह्य और प्राचीन इतिहास में उनकी गहरी पैठ थी। संस्कृत-साहित्य के प्रमुख अंगों का अध्ययन-अंगन करने में तो वह निरन्तर उत्तर रहते ही थे कई भारतीय शास्त्रों में भी उनकी बड़ी गहन गति थी। अपने पत्रक व्यापार में वह पूरे बल थे। विद्याभ्यसनी ऐसे थे कि जब सारा संसार निदान-निमग्न हो जाता था तब उनको स्वाभ्यास में लग्न होने का अवकाश मिलता था।

बनारस चौक की कोतवासी के पीछे मस्जिद के सामने गरियरी बाजार में उनकी लम्बे-लम्बे सभा सौ वर्ष की पुस्तकी बुकाने जहाँ सुखी की है। उनके सामने के तहलके पर सफेदा बिछवाकर वह प्रायः नित्य संध्यो-परान्त रात्रि में बैठते थे। उसी पर एक कोने में पानबाछा भी अपनी बगेली सिमें बैठता था। उनके बीड़े और बुकाने के आकण्ठी जर्ने का दौर लम्बे-लम्बे बस-म्यारू बड़े रात तक चलता रहता था। हिन्दी-साहित्य के बड़े-बड़े पुरस्कार महारथी बहीं आकर उनसे काव्य-शास्त्र-विश्लेषण समय-यापन करते थे। हिन्दी-संसार के सुप्रसिद्ध कलाविद् रामकृष्णदासजी भी प्रेमचन्द्र महाकवि रत्नाकर, प्राध्यापक लाला भयवानशील आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि महानुभाव बहीं प्रायः आगत ग्रहण करके साहित्य की भारतीय समस्याओं पर विचार-विमर्श और भाव-विनिमय करते थे। रामसाहब प्राचीन भारतीय विस्मयता और मुक्तिका पर, लाला भयवानशील सभ्यों की व्युत्पत्ति और निबन्धन पर रत्नाकरजी ब्रजभाषा-साहित्य की बारीकियों पर, आचार्य शुक्लजी संस्कृत-साहित्य की विविध प्रवृत्तियों पर तथा प्रेमचन्द्रजी कथा-साहित्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर जब बातें करने लगते थे तब 'प्रमाद' भी की मरस्वती का मुन्डर होना देखकर बहिन रह जाता पड़ता था।

बहिरक आचार्य और उपनिषदों के लक्ष्योद्धार वाक्य था उन्हीं कष्टस्य थे ही संस्कृत-महाकवियों ने किछ धर्म का बहीं किम अर्थ में लैसा अमरुत्कारपुष्प प्रयोग किया है। इनको भी वह सोदाहरण उपस्थित करते चलते थे। पालिहात्र और आनुवंशिक-शास्त्रों के महत्त्वपूर्ण प्रकरणों पर

उनके प्रबन्ध सुनते से उनके विस्तृत ज्ञान पर आश्चर्य होता था। हाथी मोड़ा गाव आदि के कवियों की परत और उनके स्वामियों पर उनके सुबाहुम कवियों के अनिर्वाय प्रभाव का वर्णन उनसे सुनते पर एक अत्यन्त रोचक और विस्मयकारी प्रसंग उपस्थित हो जाता था। इसी प्रकार हीरा मोठी मुंगा आदि रत्नों के गुण-दोषों के प्रभाव का वर्णन भी शास्त्रीय प्रमाणों के साथ करते थे। एतद्विपर्यय रत्नों के नैतिक उद्धारण सुनकर उनकी स्मरण-शक्ति की प्रकृति पर बड़ा कुतूहल होता था।

'प्रसाद' की हलवाई-बैप थे। अपने हाथों बहुत ही स्वादिष्ट भोजन बनाते थे। भोजन आदि में यदि एक ही अतिथियों को भोजन कराना है तो बाराह और विस्ते की बर्तियाँ बनवाने से किताना मेवा और मावा लयेमा किन्तनी धीमी और केसर इलायची पड़ेनी इसका बिट्टा भी तयार कर देने से और खदानी ही बोलकर किन्नावाते थे। इसी तरह खोर-और मिठा र्यों के सामान की निरुदार बतना देते थे। भोटानी लीगापर अब सिला भीत पहाड़ी गहद, कस्तूरी आदि बेचने मातें व तब उनकी चीखों की पट्टी करने में बहुभुत कौशल का परिचय देते थे। नय-बूटी तो स्वयं बहुत धम्पी बनाते और मित्रों को पिनाते थे। अपने चरेम व्यवसाय के लिए जहाँ किमान इन आदि भी अपनी देख-रेख में वनवाते थे। अधिक तर देसी रजवाड़े और कमीदार नईय ही उनके बँबे माहक थे। किमान और इन के तैयार होने पर छोटी-सी पीसी में अन्तरकी मित्रों को प्रेमो-पहार भी दिया करते थे। जाड़े में जो मुक्त मन्बर (कस्तूरी का इत्र) बनाते थे वह बिहाण में करने पर पूस-माघ के जाड़े में भी पसीना पवा करके अपना कमाक विखाता था। उत्तम श्रेणी का किमान भी बैसा ही जोहर विखाता था। बीड़े पर सीक से उड़की लकीर खींच देने से जाड़े की उठ म भी लकाट पर पसीना भा जाता था और परम पोछाक उतार देनी बकती थी। बाण्डोवियों और कड़ी-बूटियों के मुत्रों को बखानते समय बचक रत्नों के स्कार बहने समते थे तो बँचराज ही प्रतीत होने थे।

बनारस के पुरान रसों पंथियों मरकों शाकतीकाका रत्नों

गायिकाओं और फनकड़ों की बहुत सी अद्भुत कहानियाँ सुनाया कर
 व जो मनोरंजक होंग के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी होती थीं और जिन
 पठा चलता था कि उस अतीत युग के सूत्री और कलाबन्त किशोर उदा
 तथा निष्ठावान होते थे । रईसों की गरीबनिवाजी पद्धतों का स्वाभि
 मान नर्तकों की मुख्य-निपुणता साबनीबाजों की रचना-वास्तुरी गुण
 का निर्बलों की सहायता में सहयोग गायिकाओं का मर्मादा-याजन और
 फनकड़ों की गरीबपरवरी उनसे मुक्तकर उस युग का दृश्य मनदृक्शुभो के
 धामने सा जाता था । मासिक 'हंस' का जो 'काशी-अंक' निकला व
 उसमें उनके किस्तबाय हुए कई ऐसे लेख छपे थे । उनके अमिल मित्रों म
 भारत कला-मवन के जमराता की रामकृष्णबासजी के पास भी पुरान
 संस्मरणों का खजाना है, परन्तु रामसाहब से लेकर उन्हे साहित्य-मन्त्राल
 म संचित करने वाला कोई नहीं है ।

मैं जब 'हिमालय' का सम्पादक था तब मैंने रामसाहब से 'प्रसाद' की
 के सम्बन्ध में संस्मरणार्थक लेखमाला लिखावाई थी पर सम्पादन-कार्य
 से भिरे विरत होने के बाद यह लेखमाला अधूरी रह गई । 'प्रसाद'-सम्बन्धी
 संस्मरण लिखने के एकमात्र अधिकारी रामसाहब ही हैं । हिन्दी-संसार
 को उनसे यह साहित्यिक बरोहर ले लनी चाहिए ।

'प्रसाद' की अपनी खजानी में दुस्ती भी सड़ चुके थे । उनका कसौटी
 शरीर बड़ा गठीला था । उम्हाने मस्स-विद्या का भी अध्ययन किया था ।
 पहलवानों के अजीब किस्ते तो सुनाते ही थे बॉम-पेंच के बहुतेरे नाम भी
 उन्हें याद थे । कई म्यापार-रतनों के रत्नाओं की बाली में कैसे-कैसे विचित्र
 अर्धबोधक शब्द हैं और उनका रूप कितनी सावधानी से मड़ा गया है
 यह भी वह बतलाते थे । मुनारां और मस्काहूँ की बोली के रहस्य भी वह
 जानते थे । लैर है कि उस समय उनकी बातचीत का महत्त्व ध्यान में
 नहीं आया । विविष्ट व्यक्तियों के जीवन की दिग्दर्शिका जिसत चलने का
 काम साहित्य की समृद्धि के लिए किया जाना चाहिए । यदि 'प्रसाद' की
 की बातें उस समय टॉक सी गई होती तो आज वे साहित्य की अमूल्य
 सम्पत्ति समझी जातीं । किन्तु उनके जीवनकाल में ही उनका उत्कर्ष
 बहनों को असह्य हो गया था । उनकी रचनाओं की कट-से-कट आलोचना

होती रही पर उन्होंने कभी उस पर ध्यान न दिया। वह स्वान्तः मुद्राय
मिचलते थे अर्थ वा वश की कायता ने नहीं।

इस निर्मम संसार में जीन्ने-जी न प्रेमबन्ध का परमा 'न प्रसाद की
और न 'मिरासा' की ही। जब ये संसार से चले गये तब इनके गुनमान
के साथ यह भी वनमूठ होने लगा कि साहित्य-क्षेत्र में वे अमोघ मेधा
प्रकृत होकर जाये थे। प्रसादजी की जो अथवा और उपमा हुई वह
किसी से छिपी नहीं है। पर हिन्दी की 'प्रसाद'की कविता कहानी उप
न्यास नाटक निबन्ध आदि के रूप में जो निधि दे गए उनका मूल्यांकन
करके आज पीरब का अनुभव किया जा रहा है। जगत् की यही परम्परा
गठ पीति बात पड़ती है कि वह युग की विभूति को उसके विनीत हो
जाने के बाद ही पहचानता है।

'प्रसाद'की कभी चिन्ता कवि-सम्मेलन में नहीं जाते थे। मिर-मोष्टी
में सस्तर कविता-पाठ करते थे। गंगा में बगड़े पर मित्र-मण्डली को बड़ी
उमंग से गाकर अनेक कविताएँ सुनाते थे पर साबरनिक समारोहों में
कभी नहीं। गोरखपुर में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का
अभिषेकन 'प्रसाद'-अभ्यारक भी सर्वोत्सर्कर विद्यार्थी के समापतित्व में
हुआ था। वहाँ के कवि-सम्मेलन की अघ्यक्षता के लिए 'प्रसाद'की के पास
तार जाया। तार में सजावति विद्यार्थीजी और उत्रपि टण्डनजी के नाम
अंकित थे। उसे पाठ ही अममनस्कता से उसके जलन रसकर जाते
करते लगे। उनके परम स्नेहमाजन और हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार
पंडित विनोदचंद्र व्यास वहाँ बैठे थे। व्यासजी ने उनसे बड़ा आग्रह
किया कि स्त्रीहृति-नूचना नेत्रकर अरस्य पीरकपुर बसिए, हम कोय साथ
चले। पर वह हँसकर बात टाक गए। किन्तु काशी-नागरी-प्रचारिणी-
सभा के कोठीबंद-स्मारक क अरसर पर जीवन में केवल एक ही बार
उनको साबरनिक समारोह में कविता-मान करवा पड़ा था। हिन्दी सभ्य
सापर क सम्पादकों का सम्मान करने का जो मायाजन हुआ था और
उसके साथ जो कवि-सम्मेलन हुआ उसके अघ्यक्ष थे प्रसादजी के साहित्य
बुद महापद्मीपाम्माय देवीप्रसाद सुकल कविचक्रवर्ती। आभार्य क्यामसुन्दरकी
के आग्रह पर भी जब 'प्रसाद'की कविता-पाठ करने को ठकार न हुए तब

उनके पुत्र के अभ्यस-महत्त आदेशानुसार उन्हें कविता-गान करना पड़ा। उनके सक्ति-मधुर कण्ठ-स्वर से सारी समा मन्त्रमुग्ध हो रही। अपनी कविता गाते समय वह स्वयं भी भाव-विभोर हो जाते थे।

उस समय काशी में हिन्दी-साहित्य के बुरन्दार महारथियों का बड़ा झण्डा जमपट था। सबके साथ उनका सम्बन्धपूर्ण सम्बन्ध था। एक बार प्रेमचन्दजी ने अपने 'हंस' में उनके ऐतिहासिक नाटकों पर सम्पादकीय मग प्रकट करते हुए लिख दिया था कि 'प्रसाद'जी प्राचीन इतिहास के गढ़े मुँह उघाडा करते हैं। किन्तु जिस समय यह मत प्रकाशित हुआ उस समय भी प्रेमचन्दजी सबा की भाँति 'प्रसाद'जी के साथ बैठकर निर्विकार चित्त से साहित्यिक संक्षाप करते रहे। दोनों महारथियों में कभी किसी प्रकार का मनोमास्मिय व्यवसा भ्रमनस्य नहीं हुआ। उनकी तीव्र आलोचना करनेवाले सज्जन भी उनके पास पहुँचकर पबोचित बाहर-मान ही पाते थे। किसी के प्रति उनके मन में कोई रागद्वेष न था। उनकी अभ्यर्चना करण के उध कई संस्थानों से अनुरोध होते रहे मए, पर वह सम्मानित होने के लिए कभी कहीं काशी के बाहर नहीं गये। एकान्त भाव से साहित्य-समाधान में संलग्न रहकर ही सारा जीवन बिता दिया।

'प्रसाद'जी छायावाद और रहस्यवाद के युग में उत्पन्न हुए थे। जड़ी वाली हिन्दी में ही कविता करते थे। किन्तु प्राचीन ब्रजभाषा-काव्य के भी मर्मज्ञ थे। पुणजी कविताएँ काफी कण्ठस्थ थीं। ब्रजभाषा-साहित्य के बड़े अनुपमी और प्रशंसक थे। काशी में होली के बाद 'बुढ़वा मंगल' का महात्सव गया की मध्य नारा में हुआ करता था। चैत की चटकीली चाँदनी में प्रसस्त बजड़ों पर सजीले सामियानों में नृत्य-गान का दर्शनीय आयोजन हाता था। उन सुमग्निष्ठ बजड़ों के चारों ओर दर्शकों और धोनामों की लौकाएँ राग-भर डटी रहती थीं। 'प्रसाद'जी की भाव पर उनक साहित्यिक बन्धु भी समीठ का आनन्द सूटते थे। काशी की सुप्रसिद्ध पायिकाएँ मूर और तुलसी के विनय-पद जब गाने लगती थी 'प्रसाद'जी भाव-विह्वल हो उठते थे। एक दिन काशी-नरेश के बजड़े पर विद्यावारी ने जब मूर का एक पद (अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल) गाया तब 'प्रसाद'जी के सजस गैरों से अनवरत अभ्युत्था प्रकाशित हो चली।

उनके घर पर दरबार के सामने ही जो शिव-मन्दिर है उसमें फास्गुनी महाशिवरात्रि का महोत्सव हुआ करता था। उनके परिवार की यह पुरानी परम्परा थी। उसमें अधिकतर साहित्यसंघियों का ही समागम होता था। उस गान-बाज के समारोह में भी काशी की कोई सर्वप्रथम गायिका केवल शास्त्रीय संधीत सुनाने आती थी। मूल्य नहीं होता था पर येय वह कुछ साहित्यिक ध्यान देने वाले ही होते थे। बड़े गान्त नाच से और बड़ी शिष्टता के साथ वह उत्सव सम्पन्न होता था। इसी प्रकार अपने बंस की मर्यादा का निवाह वह प्रत्येक पर्व पर करते थे। भावपी पूर्णिमा (एखाबन्धन) के दिन चाँदी और ठबि के सब तरह के बड़े-छोटे सिक्कों की राशि अपने माथे लेकर बैठते थे। अमिर्नादा बाह्यनों की बलिना बँधी-बँवाई थी जिन्हें पूजवत् अपना अन्न मिला जाता था। होसी सीबासी बराहुर सब त्योहारों में उनके परिवार की पुरानी प्रथा का पासन बिबिबत् होता था। उनका बराना काशी में बहुत प्रतिष्ठित माना जाता रहा और उससे सामान्यित होनेवाले लोग उसे दरबार की संज्ञा देते थे। 'प्रसाद'जी को देखते ही अनेक काशी-निवासी 'हर-हर महादेव' मात्र कहकर उन्हें करबद्ध प्रणाम करते थे। यह प्रतिष्ठन बनारस में केवल काशी-नरेश को ही प्राप्त है। किन्तु बड़े राम-रंय वाले बनी बराने में पैदा होकर भी अपने निष्कलंक चरित्र के प्रभाव से ही वह इस प्रतिष्ठन के आसीन अधिकारी बने रहे।

'प्रसाद'जी संस्कृत-साहित्य के स्वाभ्याय के अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों का भी अनुशीलन करते रहते थे। नागरी-प्रचारिणी पत्रिका (काशी) में उनके जो शोध-महान ऐतिहासिक निबन्ध प्रकाशित हुए वे उन्हें पढ़कर स्वनामधेय इतिहासज्ञ विद्वान् डॉक्टर काशीप्रसाद जामसवाल ने भी उपकृष्णबास के घर पर उनका हार्दिक अभिनन्दन किया था।

घातें बहुत हैं, पर कहीं तक बिना जाए। बानसी के तौर पर जो कुछ यहाँ बिना गया है उससे 'प्रसाद'जी के साहित्यिक पहलू का विशेष सम्बन्ध नहीं है, ध्यावहारिक जीवन की झलक-साँझी ही मिल सकती है।'

१. मन्मथराज सन १९६१ बनारसी ('प्रसाद' ग्रंथ माला १, पृष्ठ ६, अंक १-४) काव्यरत्ना।

स्वर्गीय श्री रघुवीरनारायणजी

बिहार के पुरानी पीढ़ी के साहित्य-सेवियों में श्री रघुवीरनारायणजी का बड़ा आदरणीय स्थान है। अपने समकालीन बयोवृत्तों में उनकी स्पृहणीय प्रतिष्ठा थी। वह अंग्रेजी और फ़ारसी-उर्दू के प्रमुख विद्वानों में गिने जाते रहे। हिन्दी में उनकी कविताएँ देश भक्ति और भक्तवद्-भक्ति की भावनाओं से परिपूर्ण हैं। भोजपुरी माया के वह सर्वप्रथम सफल कवि थे।

अंग्रेजी के वह ऐसे मेधावी कवि थे कि अंग्रेज विद्वानों और कवियों ने भी उनकी अंग्रेजी कविताओं की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की थी। इंग्लैंड के 'पोएट मारिएट' (राजकवि) ने उनकी प्रशंसापत्र दिया था। पटना-कॉलेज के अंग्रेज प्रिंसिपल ने भी उनकी अंग्रेजी कविताओं पर मुग्ध होकर उन्हें प्रशंसात्मक प्रमाणपत्र देकर उत्साहित किया था। मने उनके कई प्रशंसापत्रों को उनसे माँवकर बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अनुशीलन विभाग में सुरक्षित रखवा दिया है। उनके पीत्र श्री अबनन्ददेव नारायण जो हिन्दी के बड़े होतहार और प्रतिभाशाली नवयुवक कवि हैं उनके निधन के बाद उनका एक अँगरसा (अबकन) भी उसी संग्रह में रखने के लिए दे चुके हैं। साथ ही उनकी दो प्रकाशित कविता-मुस्तफ़े भी अबनेन्द्रजी ने बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् के अनुमन्त्रान-मुस्तफ़ालय के लिए भी दीं। उनके पुत्र श्री हरेन्द्रदेव नारायण भी ए हिन्दी के यद्यस्वी कवि और प्रीङ्ग मार्ग कवि हैं। इन्होंने भी भोजपुरी में 'हुँवरसिंह' नामक बड़ा ओजस्वी काव्य ग्रन्थ रचा है और कई मौलिक उपन्यास भी लिखे हैं। इसके अलावा उनकी पुत्रवधु श्रीमती प्रकाशवती नारायण भी बिहार की आधुनिक विदुषी महिलाओं में अपनी साहित्य-साधना के बल पर सम्मानपुत्र स्थान की अधिकारिणी बन चुकी हैं। यह बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

के सार्वजनिक पुस्तकालय की संभालिका हैं। इनका एक नया सामाजिक उन्मास दिल्ली के एक प्रसिद्ध प्रकाशन से निकलता है। इनकी कहानियाँ और कविताएँ इनकी मौलिक प्रतिभा का परिचय देकर बिहार की साहित्यिक महिलाओं में इनका नाम उजागर कर चुकी हैं। इन प्रकार उनके सुषुप्त पौष और पुनरुज्ज्वल के द्वारा उनके बंग की साहित्यिक परम्परा कायम मति में बल रही है। उनके ये बमबुर साहित्य-सेवा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रमत्तिपूर्ण रहकर उनके साहित्यिक पूषकों का सौख्य बना रहे हैं।

बहु मारण (छपरा) जिसे एक नया गाँव नामक ग्राम के निवासी भीवास्तव कामस्थ थे। उनके पुर्वजों में कई विद्वान् साहित्यकार और भक्त कवि ही चुके हैं। उनके पुषकों और बमबुरों की साहित्य-सेवा एक लम्बी उन्मास परम्परा प्रवर्धित करती है जिससे यह सहज ही अनुमान होता है कि उनके अभिजात कुल पर ईश्वर का करदान की जाया है। ममबहूषा का बिना पीढ़ी-दर-पीढ़ी साहित्य-सेवा की गृहस्था स्त्री बल सकती। ऐसे दृष्टान्त विरल हैं। ममबान् श्रीरूपन से भक्तवर भक्त ने जब यौवमवृष्ट व्यक्तियों की मति के विषय में प्रश्न किया था तब ममबान् ने स्पष्ट कहा था कि ऐन व्यक्ति मूढाचारी और धीबन्त हृत्नों में जन्म लेते हैं पर ऐसा जगम हम संसार में निस्सन्देह अति दुर्लभ है। यह पूरे उत्पन्न का प्रथम यौवमभगवद्गीता का अध्याय में श्लेष्य है। बाबू का अमदास और ससमान युग में ऐसी सेवा मने ही अभिदबमनीय भयवा उदात्तास्पद समझी जाए, किन्तु यह निश्चित है कि कृतीनता के माय प्रतिभा या विद्वत्ता द्वारा उपाधिक कीर्ति का संयोग वहाँ कहीं बंगानुद्वेष काय पड़े वहाँ ईश्वरीय प्रेरणा का संकेत अवश्य रहता है। मठ उनकी साहित्य-साधना में बलापास यह बाधना बनती है कि उनके प्रतिष्ठित बचने को ईश्वर ने कभी हुआदृष्टि की कारण से देखा ही हुमा।

भाङ्गपुरी बाया में उनका 'बटोहिया' मीठ बहुत खसिक प्रसिद्ध है। यह भाङ्गपुरी का 'बन्नेमाठरम्' है। उनका 'भारत-भवाती' नामक मीठ मन् १९१२ म पटना में हुई कथिम में गाया गया था। 'भारत भवाती' नी भाङ्गपुरी का 'जग-मप-मन बपितामक' का यमान राष्ट्रीय मीठ है। उनके ये दोनों मीठ उनके बम्परिक बेरानुराम के परिचायक हैं। कवि

क अतिरिक्त वह हिन्दी-नाट्य के भी बड़े खोजक थे। श्री योद्धासाहय प्रसाद द्वारा सम्पादित और संश्लिष्ट भक्ति-प्रधान पत्रिकाओं में उनके व्याख्यात्मक लेख छपे थे। वह इतिहास के भी पंडित थे। पुस्तक भण्डार (कहेरिमासराय) के रजत-जयन्ती स्मारक-ग्रन्थ में चित्रन-छाप पर उनका सौमपूर्ण ऐतिहासिक निबन्ध छपा है। आर्य नागरी प्रचारिणी मण्डल द्वारा प्रकाशित श्री राजेश्वर-मभिनयन-ग्रन्थ में उन्होंने पूज्य राजेश्वर बाबू के संस्मरण लिखे थे। मैं उनसे आत्मकथा लिखने का आग्रह करता ही रह गया पर अपने जीवन के अन्तिम समय की विषम परिस्थिति से विरह होने के कारण वह सिद्ध न सके। जब कभी उनका सस्पर्श सुलभ होता था अपनी आत्मकथा के कुछ प्रसंग सुनाने लगते थे। भारतेन्दु-युग के साहित्य-सेवियों में से कितने ही के साथ उनकी पैनी भी। बाबू राजा कृष्ण दास बाबू रामवीरसिंह, बाबू धिवनन्दन सहाय पंडित बालकृष्ण मठ बाबू यशोदानन्दन असीरी बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदि से उनका अनिष्ट सम्पर्क रहा। इन साहित्यकारों के संस्मरण भी उनके साथ ही बने गये। त्रिबेदी-युग के साहित्य-सेवियों में महाकवि 'हरिबीप' लाला भगवान दीनारी महामहोपाध्याय मकलनारायण शर्मा पंडित ईश्वरीप्रसाद लाला बाबू यशवन्त सहाय 'ब्रजवल्लभ' आदि से भी उनकी बड़ी अनिष्टता थी। वह अपनी छात्रावस्था से ही साहित्य के अत्यन्त प्रेमी थे।

बनेसी-राज्य (पूर्विया) के अजीश्वर राजा कीर्तनिसिंह बहादुर ने उनके गुणों पर मुग्ध होकर उन्हें निजी सचिव बनाया था। राजा बहादुर बिहार के राजाओं में एक आदर्श हिन्दी प्रेमी गये थे। वह रजवीर बाबू से युवजन-गुण्य व्यवहार करते थे। प्राचीन काल में राजाओं के आश्रित विद्वानों का जसा आदर-नाम होता था वैसे ही बनेसी-दरबार में रजवीर बाबू का भी हुआ। राजा बहादुर ने इनको पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी। किसी राज्य में अपने मंत्री को वैसे स्वतन्त्रता न दी होगी। उनको यह अपना परम हितैषी मानते थे। उनकी सलाह की बड़ी इत्त करते थे। यह रजवीर बाबू के निष्कर्ष परिलक्षित भी महिमा थी। उन्होंने बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भवन-निर्माण के लिए राजा बहादुर से दस हजार रुपये आरम्भ में ही दिसवाये थे। राजा बहादुर ने उन्होंने कई

साहित्य-मन्त्रियों का सम्मान करवाया था। मेरे साहित्य-गुरु पंडित ईश्वरी प्रसाद वर्मा द्वारा सम्पादित और संशुद्धित मासिक 'मनोरंजन' का एक सर्वांगसुन्दर विधायांक निकला था जिसके प्रकाशन का सारा खर्च उन्होंने राजा बहादुर से रिकवाया था। गर्माजी की 'रामचरित' नामक पुस्तक जब रामनाथ बर्मन कम्पनी (कलकत्ता) से बड़ी सज्जद के साथ सचित्र प्रकाशित हुई जो राजा बहादुर को समर्पित हुई थी और उन्होंने ही राजा बहादुर से समर्पण की स्वीकृति लिखवाई थी तब राजा बहादुर ने गर्माजी को बनेली-दरबार में बुलाकर एक सहज मुद्रा में पुरस्कार किया था। गर्माजी को प्रथम श्रेणी का मार्ग-स्यया टा मिला ही था दरबार में पाँचों टुकड़े रेशमी कपड़े भी मिले थे। एक बार राजा बहादुर और गुरु बीर बाबू कसकसाये थे। गर्माजी उन लोगों में मिलन के लिए पठर हिन्दू कम्पनी (१ मही स्ट्रीट) में गए। वहाँ राजा बहादुर ने गर्माजी को अपने हाथों पान के बीड़े दिए और पाँच पिनियाँ उनकी जेब में डाल दीं। गर्माजी ने अंग्रेजी की 'पियसन्स' पत्रिका से कई कहानियों का भारतीय स्वरूप में हिन्दी-अनुवाद किया था। वह कहानी-संग्रह गया पुस्तकमाला (कलकत्ता) में प्रकाशित हुआ था। बनेली-राज्य के राज-कुमार और राजा बहादुर के बड़े मंत्री के पुत्र रामानन्दसिंह की वह समर्पित था। कुमार साहब ने उनके लिए गर्माजी को पाँच सौ रुपये दान के। रघुबीर बाबू के माध्यम से ही गर्माजी ने जब मेरी कारेली के 'असमा' उपनाम का हिन्दी-अनुवाद किया जो पुस्तक मण्डार (कहरिया सहाय) में प्रकाशित हुआ तब उन रघुबीर बाबू को ही समर्पित करके गर्माजी ने उनके उपकारों के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित की।

राजा बहादुर के जीवन-भर वह दरबार में सर्वोच्च सम्मान का उपनोग करत रहे। राजा बहादुर के बहान्त के बाद भी रानी साहिबा ने उनको वैन ही सम्मान के साथ राज्यालय में रखा। उनको राज्य में भू-सम्पत्ति भी मिली थी। महक से ही उनका भोजन आता था। तीपटिन में भी वह रानी साहिबा के साथ आते थे। उनमें समय-समय पर आवश्यक सम्पत्तियों के अतिरिक्त कार्य काम भूही किया जाता था। उन्हें या इन्स दरबार में बुलाया था उनमें होमिओपैथी की दवाएँ उपेकर वह प्रतिदिन

मरीचों को मुस्त बाँटते थे। बिहार के सबबबासी सभ स्वनामधन्य 'स्पकसा' जी के कृपापाशों में उनका विक्षिप्त स्वान था। अपनी अनन्य कामक्षि के प्रभाव से ही वह भी स्पकसाजी के समान सिद्ध सभ के स्नेहमात्रम हुए थे। सबमुच वह स्वयं भी एक सरगृहस्य सभ थे। उनके वर्तमान बंधवर्तों की नामावली भी उनकी भगवत्भक्ति की परिचायिका है।

उपर्युक्त शर्माजी के साथ मैंने उनको सबसे पहले महामहोपाध्याय रामावतार शर्माजी के घर पर पटना में देखा था। महामहोपाध्यायजी के परमप्रिय विद्यार्थियों में एक वह भी थे। दोनों एक ही जिले (छरटा) के निवासी थे और परस्पर भोजपुरी में ही बातें करतें थे। बिहार के निर्याताओं में प्रमुख डॉक्टर लक्ष्मिशामन्वसिंह उनकी अंग्रेजी और भोजपुरी कविताओं के बड़े प्रशंसक थे। पटना प्यारने पर वह सिन्हा साहब से सबध मिलते थे। बिन्हा साहब भोजपुरी के बड़े हिमायती थे। रजुबीर बाबू को पटना विधीजन के कमिस्तर ओस्डहम साहब और पटना दुनिग कॉलेज के हिन्दी-प्रेमी प्रिंसिपल पिन्केट साहब भी बहुत मानते थे। ये दोनों हिन्दी प्रेमी बड़ेज उनके सेंट होने पर टूटी-फूटी भोजपुरी में ही बोल उठते थे और भोजपुरी शहरों में स विचित्र अर्थ के मन्त्रों का मन्त्रेयी पर्याय पूछने लगत थे। रजुबीर बाबू के बतलाये हुए उपर्युक्त शर्माओं से उन्हें बड़ा प्रसन्न होता था और इसीलिए वे ठीक उनका सत्कार करते थे। उन्होंने कई ऐस पत्र बताने से जो अब याद नहीं हैं। यदि वे भारत-मस्मरण सिद्ध गए होते तो आज उधका माहिरियत मूख्य बड़े महत्त्व का होता। नाटा कद, गत्रेला गरीर, साबला रंग साधारतार होने ही बहुरे पर मुमकराहट की बाधा गुहपुड़ी परसम्पाट्ट पीने का जीक राय-नाम-मुमिरण का मानसिक अम्वास शानी म स्वाभाविक मित्रम बेरामूपा में गारनी व्यवहार में सहज मरकता और आपरण में लाबुता यह उनकी लतवीर आज भी जीर्णों में सुखी हुई है। उनका भक्तिम धर्मम सम्मेलन-मदन (ब्रह्मकुर्मी बटना) में हुआ था। मैं ब्रह्मकुर्मीजी से उनकी दिव्यारमा की सलठ देवता चाहता हूँ।^१

१ गीतम : २१ अक्टूबर १९२२।

ब्रह्मकुर्मी : अक्टूबर, १९२२—व्यंग्याहिक उदर विहार (श्रीगणेशी विद्यार्थी) बटना।

स्वर्गीय अच्युतानन्द दत्त

श्री अच्युतानन्द दत्त को स्वमामी हुए जगन्नाथ की भक्ति बर्ष बीने होंगे । वह कोशी-काठ के 'अनन्दाही' ग्राम के निवासी थे जो अब सहरणा जिले में है । पहले वह भावलपुर और दरभंगा की सीमा पर मधेपुरा मण्डल में था ।

एक बलि साधारण कायम्य-परिहार में जन्म नाम के कारण उसकी गिला-सीमा भी साधारण ही हुई । पर केवल स्वाध्याय के द्वारा पर उन्होंने एही योग्यता अर्जित कर ली कि उसकी विद्वाना एवं शक्तिमा देखकर आश्चर्य होता था ।

इसकी स्वाम-जन के अंश मन्त्रों पर चमत्कार थे । कुर्तु भी किसी विषय अथवा पर ही पहचान थे । टापी कभी पहनी ही नहीं । हुने मम उनका साग्य शरीर बरपरामे लयना था । सदा प्रबल रहना उनका महत्त्व स्वभाव था । यदि पान की गिला-रिपो मूँह में लेते हों हुनेने-कमाने का कोई प्रसव था यथा ता तुम्हें बौद्धों का ब्रह्मण हमने लव जान और कहने कि हुँपी के नामन पान की विमात ही बना । कोई अन्टी बीज लान बगने ता उनकी प्रमया म मन्त्र और हिन्दी की कविता मुगल का जान । स्पृष्टि भक्ति उनकी ब्रह्मण प्रमर पी ।

वह सङ्गियामय(दरभंगा)के पुण्डक मन्त्रार में बालीपयोगी मन्त्रि माभिरु एक 'बालक के सहकारी मन्त्रारक अ । प्रधान मन्त्रारक मान्त्रार माह्व (श्री रामलीला मन्त्रार) के बहु परम स्वाह्मणन य । उनकी योग्यता भी कनी पाहू न सीमा । समयासन स्पृष्टि-महाकाण्य भाषि के अनेक अथवापुत्रक स्वाक कर्म्य य । समृद्ध-स्वाकाण्य की अर्था उक्ति पर पाभिरु पात्रंक्ति के बाध्य भी अमायास मुता हने । बाला भाषा के

साहित्य में भी उनकी अच्छी गति थी। इतिहासी रामायण के बहुतेरे स्वयं मुद्रापर मुलाने थे।

हिन्दी के प्राचीन काव्य-साहित्य में भी उनकी गहरी पंठ थी। जब माया के कवित्त-संबंधी-बनासरी आदि बिलने भी छन्द हैं। सबका पिपल बिबाल बिह्वार बा। काव्य के असकार्ये ना प्रसंग बरने पर उनक लक्ष्य और उदाहरण तत्काल मुनाकर बकित कर देते। इतने पर भी ममता और सरलता ऐसी कि कोई पाखी भी मिलता तो उसकी प्रथमात्मक बाणी सुनने ही ह्राप ओड़कर मौन हो रहते। उर्ध्व में वह दल्ल नहीं रखते थे पर मजाक-पसन्द होने के कारण घास-खास मौको पर कहने साम्य कुभते घेर मुलाने से न बूझते। उनके नाव रहने पर ज्ञान की बहुमुली वृद्धि होती थी।

उनके छोटे भाई परमानन्द बल भी बड़े प्रतिभावाली थे। इन्होंने 'बचकूत' का बड़ा मुन्दर मैपिल-अनुवाद किया था। उनकी लिखी दो बीबलिबा 'पुस्तक मण्डार' से प्रकाशित हो चुकी हैं—'परसुपम' और 'प्रतापविल्य'। इनका भी पुबाबस्था में ही देहास्त हो गया। इनकी अम्पयनपील्ला भी साहित्यिक ससग में रंग काती थी।

थी अम्पुनानन्द कहीं बाहर जाकर किसी समा-सम्पेकन में अपनी बिद्या-बुद्धि का बमब प्रदर्शन न कर सके। उनकी टीक-टीक पहचान न हो सकी। यहि वह सचमुच टीक पहचान जाते तो उनकी योग्यता का सहुपयोप हिन्दी-साहित्य को बड़ा काम पहुँचाता। उन्होंने 'आर्यों का प्राचीन निबामसवाद' और 'धनिसुत्रा की बिद्वम्पावकता' तथा 'प्राचीन मिबिला नामकओ संवेपभापुर्न निबन्ध निब' के ब उनके पाखिय के प्रनाम हैं। मिपिबा मिहिर' में उनके और भी कई लेख छे थे जो उनकी मनम पीक्या और जोषकृति के सापी हैं।

पछऔ ने 'महानाट्य का भा पद्यकट अनुशा' मैबिली मापा में किया था वह प्रकाशित न हो सका पर 'रकुबरा' का मैबिली-अनुवाद प्रकाशित है बिसे बेगकर उनकी मैबायलि का अनुमात्र किया जा सकता है। तुम्पनी-नतनई' की टीका लिगकर उन्होंने यह प्रयत्न कर दिया कि उनसे यदि इन तरह के और भी काम कराये जाय तो हिन्दी का उनकार ही

हूँ। उक्त टीका के अतिरिक्त उनकी लिखी कई अन्य पुस्तकों में प्रकाशित हो चुकी हैं जैसे— संन्यासी रामतीर्थ 'बीरबर हम्मिर' 'त्यागी भरत' 'मोन्वापी तुल्सीदास' 'सूर्य ममस्कार' आदि। जलों और पुस्तकों के सम्पादन तथा प्रुष्ट-संशोधन की कला में भी वह बड़े दक्ष थे। पुष्पक मण्डार के उत्तम प्रकाशनों की प्रामाणिकता में उनकी यमसीन्धु का बहुत बड़ा हाथ है। वहाँ से 'रामचरितमानस' का जो मिश्रण-सिद्धक प्रकाशित हुआ है उसके प्रथम संस्करण की विभूतता पर भी उनकी सही छाप है। 'मण्डार' की रत्न-अयस्त्री और उसके संशोधन संस्थापक तथा संचालक श्री रामशोचन शरमजी की स्वयं-अयस्त्री के अवनत पर जो बृहदाकार स्मारक-ग्रन्थ प्रकाशित हुआ उसका सम्पादन में दत्तजी का भी नाम सम्मिश्रित है। भाषा की शुद्धता और दाखी की सुगमता तथा रोचकता पर उनका विशेष ध्यान रहता था। इस विषय में उनके शूभाष और मत्स्यराम बड़े बहुलपुण एवं अमूल्य होने थे।

यह है कि आज भरे मन्त्रिष्क में उनके सम्मरणों की या याद प्रकाशित हो उठी है उस मरी कल्पनी संभाव नहीं पाती। यह स्मृति-काल बसत अडीअक के पुणों का बिलय हुआ एक रत्न है।^१

^१ ऐक्य अक्षुतामल्य, १९४१।

प्रथम अक्षुतामल्य, १९२९—साप्ताहिक 'कथा विहार' (बापलकी विरोधांक) पृ. ५।

बैसा धूमस्य सप्रह अनुसन्धानपीठ विज्ञानों को मुक्त होता तो साहित्य की समृद्धि-वृद्धि में बड़ी सहायता मिलती। उस समय पता लगा कि इन संग्रह का सार्वजनिक सन्तुषण नहीं होता। मुझे तो वी बतान की रूप से आज्ञा मिल गई थी। उन्हीं के आदेश से सेण्ट्रल जेल में वही कारीगरी आदि को बनते देना। उनकी कोठी में भी जेल की बनी कई चीजें थीं। वही-कारीगरी की पड़वूठी और चूबसूरी सज्जनीय थी। उन्हीं समय पहले-पहल जेल के अन्दर प्रवेश करने का अवसर मिला था। कैदियों में बहुत-सी स्थियाँ भी थी जो चरखे और कन्वे पर काम कर रही थीं। कुछ कैदियों की कदम-आठर दृष्टि देखी नहीं गई और कुछ ठा मयानक भी बने।

अन्तिम दिन प्रातः काक 'गळता नाका' देखने गया और सन्ध्या समय अम्बरगड का झिजा। पहाड़ के अन्दर के एक पौधुनी द्वारा विमल जल-बाग निकलकर कुण्ड में गिरती है जिसमें स्नान करना बड़ा आनन्ददायक प्रतीत होता है। वहाँ पहाड़ की गोद में कुछ बस्तियाँ भी गडर आईं। स्नान बड़ा उम्रवीय है। वहाँ पहुँचने का रास्ता भी बड़ा मुहायना है। वह एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसका रोचक इतिहास भी है। अम्बरगड या जामेरगड का झिजा पर्वत-मेखला के मध्य में है। किन्तु पर्वत-प्राचीर काटकर एक जगह प्रवेशद्वार बना दिया गया है। कहते हैं कि साम्राट् पञ्चम जार्ज की मोटर का फिल्ले के भीतरी द्वार तक पहुँचाने के लिए ही ऐसा जनर्म किया गया था। वह कुर्मेश कुर्म सर्वथा बरफित हो गया। उसके अनुसंधान पर्वत-भ्रमण की गोमा बरफित मध्य है। उसके मुख्य द्वार पर कुर्मेश्वरी भवानी का मन्दिर है वहाँ उज्ज्वल और अपनी लसवार कालीजी के चरखा में रगकर शयनपूर्वक गन्ध ग्रहण करके स्नाना करते थे। फिल्ले की दृष्टि और मुन्दरता बस देखने ही योग्य है। एक जगह राजा के जोरनालय की दीवारों पर भारत के सभी तीर्थों के रंग-चित्रों के चित्र अंकित हैं। स्नान की दीवारों में नाथ और तीर्थों के टुकड़ बड़े हैं जहाँ दियासलाई जलान पर चारों ओर जयमनाइट छा जाती है। कहते हैं कि नाथ की जगह पहले हीरे-जवाहर जड़े थे। जो हा। आगरा के झिजे में भी एक कमरा ऐसा ही देना था। किन्तु दिल्ली और आगरा

जयपुर-यात्रा के तस्मरण

के दिने स यह कही अधिक मङ्गीला और दुपम है। जयपुर गहर क
 अन्दर स उमका गिन्नर मञ्जर आता है पर ज्यों-ज्यों आदमी उमकी
 आर भाग बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उमका गिन्नर पबत-मलता क नीतर
 डूबता और आँखा की ओर हाता जाता है। उसके प्रयास आँगनों और
 हाताओं म धूमते समय प्राचीन बैभव एक गौरव की बातें याद आने लगती
 है—बापत दसा म भी मुनहमे अपने मुझने लगत है।

जयपुर की दूसरी यात्रा मन्मथ मन् १९४० म हुई—बार्डिन-जेईम
 बप बार। अन्तिम भारतीय शिन्ती-साहित्य-मन्मथन का अधिकेशन पूम्
 मोस्वामी गणारतनी क मनापत्रित्व में वही हुआ था। मैं वही साहित्य
 परिषद् का अध्यक्ष हुआ गया था। मैं अस्वस्थ था किन्तु अपने पुत्र
 साहित्यिक मित्र पीछे बाबस्पति पाठक का भावहू टाल म सका।
 नापन कितना पहाड़ हो गया। एक दिन दो बजे रात तक कितना
 रहा। दूसरे दिन तबीयत खराब हो गई। दो दिन काम पिछड़ गया।
 एक रोज कमरा बन्द कर दिन में ही सिखने बैठ। किन्तु दिन-दुम्कह
 को बाधा-बधु क बिना कम कहीं? आन्धिर फिर रात में ही जाकर
 कितना पड़ा। छपरा के बापी-मन्दिर प्रेस मे बड़ी महायता की। मैं
 बा कितना गया उस देता गया। अन्त में प्रेस में ही बा बठा। वहाँ मो
 रख गया करना पड़ा। अन्तिम दिन अन्दाज लगा कि मटर बहुत क्यादा
 बड़ गया प्रस्थान के समय तक किमी तरह म छप सकना काफी और
 भूष में हवाकाण्ड मचाकर बाकी रात म बर झोटा। पानी बरन रहा
 था। ऊपर अत्यकाट, नीचे छपरा की मुमायती मड़क अत्यन्त मे अत्यन्त
 डिङ्क लुब पीठ-पुसा की। कॉमेड में बसहरे की छुट्टी थी। दूसरे ही
 दिन मुबई की गाड़ी से जयपुर के लिए रुक करना था। यात्रा-विन्दा म
 नीर लटक-सीठाराम हुई। सब बकरी नामान महेजने-सरियाने लगा।
 बर्षा कहुनी थी कि कम जात्र ही बरसुनी। तड़के ही निग्यहृत्य स निबन्
 स्टेसन चला। उम समय कोई मबारी कहीं मिशत्री पैदल ही एक मीन
 का अलमज रास्ता नापना पड़ा—मसूत्र माहना पड़ा। अपने पुत्रने
 नीकर बबनाब के सिर पर सामान रख रात्रेन्द्र पुस्तकालय (छपरा) के
 प्रधान मन्त्री थी केदारनाथ मद्रनाथ के साथ ज्योंही स्टेसन पहुँचा पायी

का पमकी । छटपट गाड़ी में सवार होते ही प्रेस के आबमी ने छप्पे मापन का बंडल डिब्बे में फाँक दिया । गाड़ी चल पड़ी पानी पट पड़ गया मानो प्रकृति परीक्षा से रही थी ।

परीक्षा तो इससे पहले भी हुई थी । भेरे मातृहीन बच्चे-बच्चियों की बेजभाऊ करनेवाला कोई न था इसलिए मैं हताश हो गया था कि जब किसी तरह जयपुर पहुँच न सकूँगा । बिहार-सरकार के पब्लिसिटी मंत्रालय की उमाताम एम० ए० और आर्माबर्त के सहकारी सम्पादक भी जयकान्त मिश्र छपरा पहुँचकर बेरी बिबधता देख गए थे । श्री उमाताम ने अपने उत्साही अनुज श्री संकरनाथ (जब एम० एस० ए) को भेरे बच्चों के तनिहास जेवरकर तरलक बुलाने का प्रबन्ध कर दिया । यदि वह इतनी कृपा न करते तो मैं किसी प्रकार जयपुर न जा पाता । छँट, बघहरे की घातील के कारण गाड़ी में इतनी भीड़ थी कि छपरा से काशी तक और बनारस छावनी से कामपुर तक मुक्तिस से विस्तर के बंडल पर बैठने की सुबाइस हो सनी । कामपुर के बाद कुछ बब-कास मिला । दूसरे दिन जयपुर पहुँचा । बनारस और दिल्ली में बुक्तियों ने बन्धी तरह मूँड़ा । आखिर बेदिग-रूम में ही स्नान ध्यान के बाद अन्नदेव के दर्शन हुए । भरी लइकियों ने साने का सामान काप्री दे दिया था ।

सम्प्रा से पूर्व जब जयपुर की गाड़ी में सवार होने मया तो देखा कि आचार्य चन्द्रबली पाण्डेयजी (वर्तमान सम्भेसनाध्याय) वही विद्यार्थ रहे हैं । रास्ते में उनके उत्सव से बड़ा आनन और सुख हुआ । राठ में विद्यार्थे पहर जयपुर में उतरे । स्टेसन पर कोई मार्गबर्धक नहीं । ठाँवा बाला कुछ आनकार तिरुला । सम्भेसन के पण्डाल से बाड़ी ही दूर पर संसृष्ट-कौलेज के भवन में (हृषामहक के सामने) पड़ाव पड़ा । पूज्य पाण्डेयजी भी साथ ही एक कमरे में ठहरे । दूसरे दिन मोर में श्री उमाताम वही मिल गए । लोकरमाय्य समिति (छपरा) के पं० लतीपाचर्य समी भी मिले । बिहार और बाहर के सुपरिचित साहित्यिकों ने मिलकर बड़ा सन्तोष हुआ । स्नान-ध्यान के बाद सभ्रापतिजी के दर्शन कर मया । अडेय पं० बनारसीदास अनुर्वेदी और पं०

जयपुर-यात्रा के संस्मरण

शाबरमलजी शर्मा के बचन का सौभाग्य अनेक बयों के परभाव मुक्त हुआ।

सम्मेलनाध्यक्ष का बहस राजमाता की अचानक मृत्यु के कारण नहीं निकल सका। वर्तमान जयपुर-नरेश भी सम्मेलन में न पमार सके उनका सन्देश छपकर बितरित हुआ। कुछ अधिवेशन और विषय निर्वाचन-समिति में अनेक साहित्य-सेवियों से मुरत के बाद भेंट हुई। डॉक्टर रामकुमार शर्मा से कुछ साहित्यिक चर्चा भी हुई। देखा कि मत भेदा का अन्धाका पसीने से घीबा जा रहा है। राजवि टण्डनजी बहुत हुए विन्ध्य को निबारेने बाके अमस्त्य ये। साहित्यिक वंगल का भी अपना एक निराशा रंग होता है।

दूसरे दिन कौंसिल हॉल में साहित्य-परिषद् की बैठक हुई। मैं अपना मुद्रित भाषण पढ़ना शुरू किया। किन्तु अस्वस्थता के कारण ऊँचे स्वर से न पड़ सका। अतः पंडित सीतारामजी शत्रुघ्नी ने पूरा भाषण पढ़ गुनाया। कौंसिल-भवन के सामन सहल में प्रतिनिधिया का परस्पर परिचय और मिश्रण हुआ। उसी समय राज्य के दीवान सर मिर्जा इस्माइल के साथ सब साहित्य-सेवियों का फोटो लेने के लिए बुलाइए हुई। 'साहित्य-सन्देश'-सम्पादक भी मुम्बई-राज्य के साथ में उबर गया वही मगर दीवान साहब से हाथ मिलाने के बाद वही इन्टार के पीछे स इम साग खिचक गए। सामने का मनोहर पहाड़ी दृश्य देखते हुए हम लोग नीचे उतर आये। रात के कवि-सम्मेलन में कुछ (बीकानेर) के नवपुत्रक कवि 'श्री मुकुन्द' ने खूब रम बनाया। हमारे दिनकरजी ठा सबत्र ही सर्वोपरि विराजत हैं। उन्हें खूब ताकियाँ मिलीं।

तीसरे दिन मेरे कलकला-मवास-कास के मित्र श्री अमचन्द्र बेमका मिल गए। वह राजगड़ (बीकानेर) के निवासी पुराने लेखक हैं। उनका साग्रह स्वागत-मत्कार दिवजी की विमल डूटी से शुरू हुआ और मामर गड़ के किले पर मञ्जुरेन समाप्त हुआ। बिहार या कि मिशर भी पोषाक नवेदिया के साथ फतहपुर (देवाघाटी) जाकर वहाँ का सरस्वती-मुस्तकाक्य अमदय बेख हूँ पर अपने एकाकी बच्चों की चिन्ता छपरा की बार बलपुत्रक वीच रही थी। नवलगड़ (जयपुर) के हिन्दी

प्रेमी वहाँ चलने का बड़ा आग्रह कर रहे थे। और भी कई जगहों से प्रेमपूर्ण निमन्त्रण मिला पर मैं ठहर न सका। जयपुर के राज-सम्मानित प्रतिष्ठित रईस कविशय्य प्रतापनारायणजी ने अपनी पुस्तकें मेरे पास भेज दीं पर मैं उनके दर्शनार्थ निकलकर भी एक दुर्लभ-दर्शन जयपुरिया भिन्न के फेरे में पड़ गया। श्रीमू (जयपुर) के बमोदय साहित्यिक पंडित हनुमान घर्मा ने भी अपनी पुस्तकें मेरे पास भेजी थीं और ललनरु की 'माधुरी' में काम करने के समय से ही उनसे पत्राचार था, पर साहित्यिकों की मण्डली में पढ़कर बमस्वली की ओर खड़ा आता पड़ा। ये दोनों इच्छताएँ आज तक साक़्सी हैं।

तीसरी यात्रा जयपुर-कपिल के समय हुई। राजेश्वर कॉलेज की विकास-समिति का मैं अध्यक्ष था। उसमें एकाएक निश्चित हुआ कि राजेश्वर विश्वविद्यालय के लिए, अपील पर राष्ट्रपति आदि प्रमुख नेताओं के हस्ताक्षर कमाने के निमित्त एक राष्ट्रमण्डल भेजा जाए। छपठ से जयपुर तक एक स्पेशल ट्रेन गई थी जिसका प्रबन्ध शामद प्रान्तीय कपिल की ओर से हुआ था। छपठ के कांग्रेस-अग्नी भी रामानन्दसिंह की अग्रगण्यता से जयपुर मिल गई। साइंस-विभाग के प्रोफेसर भी भोला बाबू के साथ मैं भी चला। बिहार के प्रतिनिधियों में बहुतेरे परिचित भी मिल गए। छपठ के बकील भी ईस्वरी बाबू बड़े मजबूत साथी मिले। रास्ता बड़ी मोच में फटा। एक जगह किसी कारण अचानक गाड़ी रुकी तो घामने ही अमरुद के बाग पर कुछ प्रतिनिधियों ने बाधा बोल दिया। उन लोगों ने मधुवन के छत्र पूर पाये। वीतों के बिना मैं गाड़ी में बैठ विरक्त समाजा देखता रहा। बड़े-बड़े बहुरंगी ठरंगी जीन स्पेशस मैं थे।

जयपुर पहुँचकर पहले बिहार-कैम्प में उतरे। उसके बाद प्रसिद्ध कलाकार भी राजेश्वर महारथी के कला-मण्डल में चले गए। बहु बिहार सरकार की ओर से उद्योग-विभाव की बहुत-सी चीजें प्रदर्शन के लिए ली गईं। भारत के अनेक प्रांशों के तर-भापि उन चीजों की प्रदर्शा करते नहीं आवाते थे। मिथिला की बनी चीक की बकिया-बगिली आदि

पर स्त्रियाँ विशेष मुक्त थीं ।

हम लोग अपने कॉलेज की छात्रन-समिति के अध्यक्ष श्री महामाया प्रसाद सिंह के साथ एक दिन भोर में राष्ट्रपति डॉक्टर पट्टाभि चौधरीजी से मिले । उन्होंने एम्बेन्स विश्वविद्यालय की नींव पर हस्ताक्षर कर दिए । आचार्य कृपलानी ने तो विशेषपूर्ण ध्यान से सिर्फ़ बाधा किया । डॉक्टर किशनू और प्रोफ़ेसर रंगा ने सहर्ष हस्ताक्षर कर दिए । खीट्टी वार बिस्वी में भागवीय श्री जयरामदास बीरतराम और श्री जयजीवन राम से भी महामाया बाबू के साथ हम लोग मिले । दोनों ने पूरी सहानुभूति दिखाई । श्री जयरामदास ने बहुत-से सुझाव दिये । उनके परामर्श बड़े अमूल्य थे । पाषी-सिद्धान्तों पर बने विश्वविद्यालय की आवश्यकता सबने बतलाई । सबसे इसको पसन्द किया कि देशरत्न एम्बेन्सप्रसादजी के नाम पर ही पाषीवाषी विश्वविद्यालय स्थापित हो सकता है । जब तो इसपर ही जानता है कि जम्पुर का एम्बेन्स कॉलेज अब तक पाषी सिद्धान्तों की नींव पर विश्वविद्यालय के रूप में परिणत होता ।

नागपुर-यात्रा का संस्मरण

सन् १९४६ के विद्यम्बर के अन्तिम सप्ताह में बिहार के शिक्षा-सचिव श्रीमान् माधुर साहू का तार मिला कि जनवरी १९५० की पहली तारीख को घाम की गाड़ी से बिहार के शिक्षा-मन्त्री माननीय आचार्य बक्षीनाथ वर्मा के घाम उनके सलाहकार (एडवाइजर) होकर माधुर जाना होना । तार के पहले एक पत्र भी मिला चुका था । उससे पता चला था कि नागपुर में मध्यप्रदेश की सरकार की ओर से, राष्ट्रीय प्रमाणीकरण-परिषद् का अधिवेशन ४ जनवरी से होने वाला है । अठरावें कौन्सेल टपट से छुट्टी लेकर ३१ विद्यम्बर, १९४६ को मैं पटना पहुँच गया ।

पहली जनवरी (१९५०) को रविवार था । घाम को पटना-जंक्शन स्टेशन पर पहुँच गया । वहाँ बिहार के बयस्क-शिक्षा-संघ के प्रकाशन-अध्यापक पंडित छविनाथ पाण्डेयजी मिल गए । मालूम हुआ कि वह भी वहाँ जा रहे हैं । यह जानकर बड़ा सन्तोष और ड्राइस हुआ । श्रीमान् पाण्डेयजी के साथ रहने से लम्बे सफ़र में बड़ा आराम रहा । मौका पड़ने पर उनसे काफ़ी मदद भी मिली ।

ठीक समय पर माननीय शिक्षा-मन्त्री आचार्यजी की मोटर आ घमकी । सर्वेक्षण के एक छोर पर छाने रिजर्व डिब्बे में सरफ़ा घामान रखा गया । अचानक दर्जे के उस डिब्बे में चार सीटें थीं । नीचे की दो सीटों पर माननीय आचार्यजी और पाण्डेयजी का विस्तर बिछा । ऊपर की सीटों पर माननीय आचार्यजी के अग्र-सहाय और मैंने आसन जमाया ।

छाने के बाद एक्सप्रेस में डिब्बा बुड़ा । गाड़ी चढ़ पड़ी । मोकामा

स्टेशन पर मोड़न होने लया। मुझे तो एंबिबार के कारण असोला भोजन करना था। भाचार्यजी के साथ चर की बनी काछी भोजन-सामग्री थी। बल्लोनी चीजें ममकीन से बचन भी थीं। मुझे पर्याप्त प्रसाद मिल गया। खात-खाते पुरानी स्मृतियाँ जाप उठीं।

अगमय सन् १९१८-१९ की बात याद आई। सततः में बखिब-पारसीम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का पाँचवाँ अधिवेशन होने वाला था। मैं जाप के एक हार्ड-स्ट्रूठ में हिन्दी-विभक्त था। जाप से साहित्यिक प्रतिनिधि बल्ले। श्री ब्रजनन्दन सह्याय ('सौन्दर्यपासक'—लेखक)^१ श्री मनपतिहाटी सरमजी (वर्तमान एडवोकेट पटना हाईकोर्ट)^२ पंडित ईश्वरीप्रसाद धर्मा (प्रसिद्ध स्वर्गीय साहित्यसेवी) आदि के साथ मैं भी बक पड़ा। उस इस में माननीय भाचार्यजी भी थे। उस समय जाप पटना के बिहार मेग्नल कॉलेज में प्राफ़ेसर थे। बाते-आते रास्ते में बड़ा मानस्य रहा। झौट्टी बार हम जोव बयोप्या में छतरे। अकप्रबन्ध श्री स्वच्छरात्री के दलनों का सौमाम्य प्राप्त हुआ। उन दिनों बहु हनुमन्निवास में रहते थे। उस समय भाचार्यजी में जैसी सरलता, सरसता और सहृदयता थी बहु आज भी वैसी ही है। उनकी मिलनसारि से कौन परिचित नहीं।

मुबह होने से कुछ पहले ही हाबड़ा-स्टेशन पर नीद खुली। देखा 'बिबबमिन' के संचालक मूसकम्बजी अइबाक दिखे में लड़े हैं। पाखेयजी ने उनको पहले ही खबर कर दी थी। उनकी धानदार मांटर न बब उनकी बालीसान कोठी में पहुँचाया तब फिर पुरानी स्मृतियाँ जाप उठीं।

मैं 'भतवाठा'-मण्डल (कककठा) में था। असह्योग-बान्धोकन का युग था। बड़ा बाजार में अफ्रीम औरस्ले के पास एक मकान में जापा खाने का कुछ सामान था। धम्मब मशीनें न थीं। 'बिबबमिन' कम्पोज होकर कहीं और छपता था। फिर 'सिबर्टी' नामक अंग्रेजी दैनिक निकला था। ममाबों और कटिनाइयों से थोर सवर्ष कपटे हुए थोर साहसी मूठ-बन्धनी ऐसे स्वाबन्धनी बने कि उनका अम्यबसाय तथा जस्ताइ एक पाठ

१. जन स्वर्गीय।

२. जन स्वर्गीय।

नागपुर-यात्रा का संस्मरण

सन् १९४६ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में बिहार के शिक्षा-सचिव श्रीमान माधुर साहू का तार मिला कि जनवरी १९५० की पहली रातीख को शाम की गाड़ी से बिहार के शिक्षा-मन्त्री माननीय आचार्य बरहीमाप वर्मा के साथ उनके सहायकार (देवदासवर) होकर नागपुर जाना होगा। तार के पहले एक पत्र भी मिला चुका था। उससे पता चला था कि नागपुर में मध्यप्रदेश की सरकार की ओर से राष्ट्रमाया प्रमाणीकरण-परिषद् का अधिवेशन ४ जनवरी से होने वाला है। अठ-राथेन्द्र नौबोजे छपरा से छुट्टी लेकर ३१ दिसम्बर, १९४६ को मैं पटना पहुँच गया।

पहली जनवरी (१९५०) को रविवार था। शाम को पटना-बंकस न स्टेशन पर पहुँच गया। वहाँ बिहार के कमस्क-शिक्षा-सच के प्रकाशन अखतर पंडित छविनाथ पाण्डेयजी मिल गए। माधुर हुआ कि वह भी वहाँ जा रहे हैं। यह जानकर बड़ा सन्तोष और डरावण हुआ। श्रीमान् पाण्डेयजी के साथ रहने से लम्बे सफर में बड़ा आराम रहा। मौका पड़ने पर उनसे काफी मसख भी मिली।

ठीक समय पर माननीय शिक्षा-मन्त्री आचार्यजी की मोटर आ बसकी। फ्लैटफॉर्म के एक छोर पर लगे रिजर्व डिब्बे में सबका सामान रखा गया। अजल दर्जे के उस डिब्बे में चार सीटें थीं। नीचे की दो सीटों पर माननीय आचार्यजी और पाण्डेयजी का बिस्तर बिछा। ऊपर की सीटों पर माननीय आचार्यजी के बंदरदास महाशय और मैंने आसन जमाया।

छः बजे के बाद एकप्रस में डिब्बा खुदा। गाड़ी चल पड़ी। मोकामा

स्टेशन पर भोजन होने लगा। मुझे तो एबिबार के कारण अकोना भोजन करना था। आचार्यजी के साथ घर की बनी काफ़ी भोजन-सामग्री थी। बसोनी बीरों नमकीन से अत्यय भी थीं। मुझे पर्याप्त प्रघाह भिन्न गया। आते-आते पुरानी स्मृतियाँ जाग उठीं।

कमलग सन् १९१४-१५ की बात याद आई। सन्तान में अलिप्त-माछीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का पाँचवाँ अधिवेशन होने वाला था। मैं आठ के एक हार्ड-स्टूड में हिन्दी-सिखक था। आठ से साहित्यिक प्रतिनिधि बसे। श्री ब्रजनन्दन सहाय ('हीन्दवपासक'—'लोक')^१ श्री अच्युतबिहारी शरदजी (बर्तमान एडवोकेट पटना हाईकोर्ट)^२, पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा (प्रसिद्ध स्वर्गीय साहित्यसेवी) आदि के साथ मैं भी बस पड़ा। उस बस में माननीय आचार्यजी भी थे। उस समय आठ पटना के बिहार नेशनल कॉलेज में प्रोफ़ेसर थे। आते-आते रास्ते में बड़ा आनन्द रहा। लौटती बार हम लोग अयोध्या में उतरे। मकरप्रवर श्री कृष्णभाजी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन दिनों वह हनुमन्निवास में रहते थे। उस समय आचार्यजी में जैसी सरलता सरसता और साहस्यता थी वह आज भी बसी ही है। उनकी निजानसारी से कौन परिचित नहीं।

मुबह होने से कुछ पहले ही हावड़ा-स्टेशन पर मीर बुझी। बस्ता 'विश्वमित्र' के संचालक मुखबन्दजी अप्रमाद दिग्घे में खड़े हैं। पान्डेयजी ने उनको पहले ही खबर कर दी थी। उनकी घानवार मोटर ने जब उनकी आलीछान कोठी में पहुँचाया तब फिर पुरानी स्मृतियाँ जाग उठीं।

मैं 'मठबासा'-मण्डक (कलकत्ता) में था। असाह्योग-आन्दोलन का युग था। बड़ा बाजार में अश्लील बीरस्ते के पास एक मकान में छापा घाने का कुछ सामान था। घायब मदीनें न थीं। 'विश्वमित्र' कम्पोज़ होकर कहीं और अगता था। फिर 'किबर्टी' नामक अंग्रेजी ईनिक निकला था। मभावों और कटिमात्र्यों से बोर संघर्ष कछे हुए बोर साहसी मुख-बन्दजी ऐसे स्वाबबन्धी बने कि उनका अम्यबसाय तथा उस्ताह एक पाठ

१. जन स्वर्गीय।

२. जन स्वर्गीय।

बन गया। उनके बैसक एवं व्यापार विस्तार से सभी परिचित हैं।

छात्रेय संगमरमर की सीढ़ियों और रंग-बिरंगे संगमरमर से बने कमरों के विभिन्न फ़र्श तथा एक-से-एक गुम्बर मखबाब उस कोठी के गूंगार से। भाग्य भी पुष्पाची पुष्प का ही साय बैठा है। मौजम के समय बाँधी के तख्त और प्याले संगमरमर की मेज पर बसकते थे। इसका ही विभिन्न लीला है। एक तख्त इतना विपुल ऐश्वर्य हुआ ही तख्त बैठ में फँसी हुई खर्नाक मरीची के बिल रहलाने वाले इश्य। इस विपमता की दूर करने के शुभ प्रयत्न बहुत हो रहे हैं क्योंकि इस बसानिक एवं शैक्षिक युग में पुरातन कर्मों के परिणाम अब विश्वसनीय नहीं रह गए।

भूतचन्दजी का आदिभ्य साहित्यिक ङा का रहा। उसमें भारती यता अधिक थी। उन्होंने बहुत दूर तक मोटर की रीर कवाई। अपनी और से हम लोगों को एक पुस्तक भेंट की, जिसमें उनके पत्रकार जीवन के अनुभव बंकिता हैं। मैं पाश्चीयनी के साथ कालीपाट जाकर मनबड़ी महाकाशी के भी दर्शन कर आया। इतने में इतिव-द्वैतवाद के साहित्य-सम्मेलन से लौटे हुए पंडित भगीरथप्रसाद बीसिठ नहीं जा पड़े। भूतचन्दजी का घर साहित्यिकों की अतिविद्याभा के रूप में बीस पड़ा। सुमा कि साहित्यिकों के लिए उसका द्वार सदा खुला रहता है। शैक्षिकी से प्रयाग के साहित्य-सम्मेलन की स्थिति सुनकर भ्यान में आया कि आज के इस साहित्यभानवायियों में स्वार्थपरता और पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की वृद्धि कितनी अधिक मात्रा में हो गई है।

वहीं पर एक युवक पित्रकार भी आ मिले। वह स्वनामधेय स्वर्गीय विमकार प्रोफ़ेसर ईश्वरीप्रसाद बर्मा के पौत्र थे। नाम अब याद नहीं। उनसे यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ कि स्वर्गीय बर्माजी की सारी कमा कृठियाँ धायब हो गईं। बीते-बी बर्माने अपने परिवार के लड़कों को भी अपनी कमा की बाँटकियाँ नहीं बतलाई—अपनी परकृष्ट कमा ही एक भी निधानी अपने परिवार में नहीं रहने दी। मरते वम तक वह अपने कमा-बंशह का सम्भूक अपने सिंछाने रहे रहे जो उनके मरते ही किसी ऐसे बहुर कोभी के हाथ सम गया तो पहले से ही उसकी तक से था। वह अपनी कमा-मर्षत्रता अपने साथ ही लेते गए।

बस पंडित छविनाथ पाण्डेय बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के मन्त्री थे उपर्युक्त प्रोफ़ेसर वर्मा ने मुझसे यह इच्छा प्रकट की थी कि सम्मेलन को अपने जमी बिच दे देंगे और उनके नाम पर सम्मेलन-मंडन में एक कला-संग्रहालय खोला तथा यह स्वयं भी सम्मेलन मंडन में ही रहेंगे । यहाँ तक कि मेरे साथ सहायक-आयम जाकर पूज्य राजेश्वर बाबू के सामने भी उन्होंने यह इच्छा प्रकट कर ली और पूज्य बाबू का आशीर्वाद भी निकल गया तथा पाण्डेयजी ने सम्मेलन-मंडन में उनके रहने के लिए एक कमरा भी मुसम्मित कर दिया किन्तु यह नहीं भी स्वीची निवाह न बना सके इतर-इतर मटकते छिरे । मुसम्मित विचकार की उपेक्ष महारथी उनको अपने साथ बड़ी बड़ा से रखना चाहते थे । मैंने उनसे कहा था कि अपनी पुण्यनी कला बतमान सर्वश्रेष्ठ कलाकार महारथीजी को सिखाया दीबिए पर उन्होंने अपने पुत्रों और पीतों को ठा अपना हुनर सिखाया ही नहीं दूसरों को भडा कैसे सिखाते ।

स्वर्गीय वर्माजी ने अपनी कला की खूबियां अपने किसी बठालु गिण्य को भी नहीं सिखाई । भारतीय उस्तादों की यह परम्परागत नीति बल्पन्त संकीर्ण है । कितने ही कलाकर्म और गुणी अपना कलात्मक कमलदार अपने ही साथ लेते गए । मुपात्र पाकर भी वो कला का बखान नहीं करता यह इच्छा के रोच क्या पकार देता होगा ?

दूसरे दिन साठ बजे रात के बन्दई-मेक से भागपुर की ओर प्रस्थान हुआ । इसमें भी सम्मेलन बजे का रिजर्व दिखा था । तीसरे दिन रात में ईश्वरगढ़ स्टेशन पर मोजन हुआ । रायगढ़ स्टेशन देखकर 'असीसगढ़' के सम्पादक मिश्रवर १० मनोहरप्रसाद मिश्र की यात्र हो गई । इसी प्रकार छिन्दवाड़ा स्टेशन देखते ही स्वर्गीय क्षेत्रीलाक्ष्मी बैरिस्टर का स्मरण हो आया जो एक बार बिहार प्रांतीय सेवा-समिति के कार्यालोत्सव में समा-पति होकर मुजफ्फरपुर पमारे थे । विभासपुर स्टेशन पर पहुँचते ही बाल-पुर-निवासी पंडित लोचनप्रसाद पाण्डेय का प्यान बँब गया जो काव्यानु-शीलन के अतिरिक्त पुस्तकालयसम्पन्न में भी कीर्ति-आम कर चुके हैं । राजगाँव-स्टेशन निला तो साहित्यमूर्ति श्रीपुस्तकाल गुप्ताचार्य बप्ती की यह श्रीबिबा-अहीर-बीसी पूरठ माह पढ़ गई जो त्रिवेदी-युग की 'सरस्वती'

के कार्यालय में कमी बीज पड़ी थी। इस तरह कई पुपने साहित्यसेवियों की स्मृतिघारा में बबगाहन करते और सभन-जननी-मण्डित पर्वतश्रेणियों की सीमा निरखते मौसं निद्रालु हो गईं। तब तक गाड़ी नागपुर स्टेशन पर जा लगी।

वहीं माननीय आचार्यजी के स्वामतार्थ सरकारी बसतर मौजूद थे। सरकारी मोटरें भी बाहर लड़ी थीं। हम लोग मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय पंडित एबिंदकर शुक्ल की कोठी में पहुँचाये गए। शुक्लजी का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। मोटा लम्बा तमड़ा घरीर और बड़ी-बड़ी लज्ज मूर्छों से सुसोमित मध्य मुलका बड़ा प्रभावशाली प्रतीत हुआ। उनका सौम्य और सौहार्द तो कमी भूलने का नहीं। हँसते-हँसते बातें करते-अपने पोते को गोद में छिमे जैसे आते और नास्ता करने के लिए सुद छाब बुला ले आते। हर कमर में सुब पहुँचकर सुख-सुविधा की बात पूछते। माननीय आचार्यजीके छाब बैठकर घरेलू सुख-सुख भी बतियाते। दिन और रात के भोजन के लिए भी स्वयं ही बुझाने पहुँच आते। नास्ता और भोजन के समय भी बच्चों से मन बहलामा करते-बजब की अपर्नती उनके बर्ताब में थी। भोजनाभ्य विद्युत् राष्ट्रीय डेम का था। उनके धपेठ सुपुत्र प० अम्बिकाबत शुक्ल आफर पंटी बठे और एजनीति तथा समाजनीति पर अपने कान्तिकारी विचार प्रकट कर हम लोगों का पूब मनोरंजन करते। एक दिन वह पाण्डेयजी के साथ मुझे भी मोटर से बहुत दूर बुझाने ले गये—जंगल झीरु पहाड़ प्रातर आदि दिनाभाये। प्राकृतिक दृश्य बड़ा मनोहर था। फिर एक दिन माननीय पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र के पास भी ले गये। मिश्रजी ने पाण्डेयजी को और मुझको अपने काम्प-मन्थ 'दृष्णायन' की एक-एक प्रति दी तथा छिसा एवं साहित्य के सम्बन्ध में विहार की प्रसति पूछी।

चीपी टारीय को लम्बप मम्बाह में हम लोग नागपुर के हवाई अड्ड पर गये। जडास से डकोटा विमान द्वारा पूज्य राजेन्द्र बाबू आये। हवाई अड्डा अत्यन्त विस्तृत है। विमान पृथ्वी पर उतरकर बीड़ने लगा। उड़के वरत ही एण्ड्रपति चौड़ी से उतरते नजर आए। उनके साथ ही चरकर घरणजी भी थे। उनके हाथ में बहुत बड़े-बड़े मुक्तियों की एक

कम्बी-सी माका भी । उसके बीच में पान के पत्तों को कठरकर बनाया हुआ एक चौका-सा छार-मका लगाया । उस माका को साव आकर कमरे के बड़े छीरे पर मँते लटकवा दिया । मुलाह के फूलों की सुर्धि से कमरा ममगमाता रहा ।

अपरान्ह-काल में अश्वमेधी-मठ में उपद्रमाया प्रभाषीकरण-परिषद् का अधिवेशन आरम्भ हुआ । पुण्य राजेश्वर बाबू ने उद्घाटन भाषण किया । डॉक्टर खुबीर और माननीय पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र के भाषणों का सारांश यह था कि उपद्रमाया हिन्दी में जो नये पारिभाषिक शब्द बनाये या पड़े जाएँगे, उनकी मूल भित्ति संस्कृत भाषा ही हो सकती है । मध्य-प्रदेश के स्वीकार माननीय भी बतस्यामदास मुख ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए भाषण किया । माननीय आचार्यजी ने अवर्निमित्त शब्दों की सुबोधता एवं सुनमता पर जोर देते हुए प्रचलित और सुपरिचित शब्दों को भी ग्रहण करने की सलाह दी । पार्श्वेयजी के वाह मँते भी अपनी राय बाहिर की । हम लोगों के मठ-प्रकाश के मतस्तर भी सत्यनारायणम् (एम० पी०) ने बहिष्कार-धमा की और मद्रास के हिन्दू कॉलेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉक्टर मनपति ने बसिध भाष्ट के अहिन्दी-भाषा भाषियों की कठिनाइयाँ तथा आवश्यकताएँ बतलाई । भाषणों द्वारा विचार-विनिमय हो चुकने के उपरान्त अन्त में माननीय मिश्रजी का जो बन्धनारमूषक भाषण हुआ उसका निष्कप यही रहा कि संस्कृत के जोत से छिने गए बहुत शब्द ही व्यापक प्रसार पा सकेंगे और आवश्यक शब्दों की सृष्टि के लिए संस्कृत के शब्द मण्डार को ही सङ्ग्रह-स्वान मानना भारतीय प्रकृति एवं संस्कृति के अनुकूल होगा । इसके बाद किये व्याकरण सम्भारण आदि के प्रभाषीकरण के निमित्त कई समितियाँ बनीं जिनमें से एक के अध्यक्ष माननीय आचार्यजी भी निर्वाचित हुए । हम लोग भी सदस्य बनाये गए । बिहार की ओर से हम लोगों ने किये समिति में प्रोफ़ेसर रूपमात्र मिश्र का तथा व्याकरण-समिति में प्रोफ़ेसर नमिनबिछोपत धर्मा का नाम दिया । इन समितियों की बैठकें हुसने बित हुई ।

सम्बन्ध कल्प महाप्रद्विय उपस्थाक के उद्घाटन में हम लोग आचार्य

पी के साथ पूज्य राजेन्द्र बाबू के दर्शन करने गये । जैसे हवाई अड्डे पर राष्ट्रपति ने भोजपुरी बोली में कुसल-ममल पूछा था वैसे ही राजमन्त्र में भी बिहार का हाकबाक पूछने लगे । उसी समय वहाँ के गवर्नर भी मंत्रालय पकबासा आ गए । पूज्य राजेन्द्र बाबू ने बड़े सवार बच्चों में हम जोगों का परिचय दिया । राष्ट्रपति की महत्ता और गवर्नर छाह्न की छावनी देखकर मैं तो स्तम्भ रह गया । गांधी-युग ने बेस में लैंगे-कैसे महापुरुष उत्पन्न किए । ऐसी विमल विसृष्टियाँ क्या भावी युग में भी हटियत हो सकेंगी ?

उक्त घमिष्टियों की बैठकों के विवरणों में वहाँ के पिछा-धरिष (एक्सेक्युटिव सेक्रेटरी) डॉक्टर बेनीचंकर झा से परिचय हो गया । सभी बैठकों की कार्यवाहियाँ बारबर्बजनक धीमता के साथ हिन्दी में टारप होकर हम लोगों के हाथों में आ जाती थीं । वहाँ के सरकारी दफ्तर में हिन्दी-टारपटाइटर मशीनों की अन्धाधुन्ध बटबटाहट सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई । अब वह पता चला कि डा० झा हिन्दी के नयोद्वै साहित्यसेवी पं० लज्जाशंकर झा के सुपुत्र हैं तब और भी हर्ष हुआ । वह मुझे और पाण्डेयजी को अपनी मोटर से अपने घर ले गये । हम लोगों ने कुछ क्षिप्ट छात्री के दर्शन को एक अकम्प साम मला । डा० जी की नैव ज्योति बहुत मन्व पड़ गई थी पर हम लोगों का बंगस्पर्ष करके उन्होंने बहुत बसीसा । वह बहुत पिनो तरु काशी के ट्रेनिंग कॉलेज के प्रिंसिपल थे । उनकी एन स्वराज्य-सम्बन्धी हिन्दी-मुस्तक थी रामकृष्ण दास ने अपने भारतीय-अन्धार से प्रकाशित की थी । वह मेरी ही देल ऐल में छपी थी । वह हिन्दी का उत्कर्ष-संवाद सुनकर अत्यन्त सन्मुष्ट हुए ।

दूसरे दिन प्रातःकाल एक विराट घन्व प्रसर्गनी हुई । उसे भी राष्ट्रपति ने ही उद्घाटित किया । वहाँ डॉक्टर रघुवीर ने जो भाषण किया उससे उनके बहुभाषाविन्न होने का प्रत्यक्ष प्रमाण मिला । वहाँ भी राष्ट्रपति प्रायः भोजपुरी में ही भाषायजी और पाण्डेयजी से बातें करती रहे । वह उस प्रसर्गनी से प्रेरणा पाने की सीध दे रहे थे । उसमें भूमध्यत की अनेक प्रमुख भाषाओं के उत्कर्षों का अपूर्व संग्रह था । राष्ट्रपति की डॉक्टर रघुवीर ने उन संकड़ों कोशों में से कई अप्राप्य कोष दिखलाये । डॉक्टर

रघुवीर की आमलीकता, यथा बीर कण देकर राष्ट्रपति भी बहुत प्रभावित हुए। हम लोग भी अपरिमित संख्या में दुर्लभ कोशों को एकत्र संयुक्त देखकर डॉक्टर रघुवीर के र्व्य एवं व्ययवस्था पर मुग्ध हो रहे। सभी प्रांतीय सरकारों के प्रतिनिधि आये थे। सबने देखा और सराहा। डॉक्टर रघुवीर के तयार किये हुए कोशों की पाण्डुलिपियाँ बलापानुकूल से सम्भारणियों में सजी थीं। उनकी सविस्तर प्रतिमाँ देखकर डॉक्टर रघुवीर के स्वाध्याय एवं घोष की महिमा का अनुमान करना भी कठिन जान पड़ा।

राज में प्रदर्शनी के स्थान पर ही बम्बई की एक महापट्ट-मण्डली के विख्यात श्रीका-कौतुक का प्रदर्शन हुआ। मण्डल-गण लोकतुल्य घामोष शेर-भूत व्यायाम-अभिनय आदि से यही धारणा हुई कि ऐसी राष्ट्रीय भावना को उत्तमिष्ठ करनेवाली मण्डली को गौब-गौब में भ्रमण करने की व्यवस्था सरकार की ओर से होनी चाहिए। अत्यन्त प्राचीन प्रदयन का। बिहार सरकार की मोर-मण्डली के कार्यकर्ताओं को अनुप्राणित करने के लिए उस मण्डली का बिहार में वादा अत्याचरमक है। कभी हाफ में जो संघीत-सुर्य-माध्य परिपद् सरकार ने खोली है उसकी ओर से यत्न मण्डली बुलाई जानी चाहिए।

उसी राज डॉक्टर रघुवीर ने अपने निवास-स्नान पर एक प्रीति भोज किया। उसमें हम लोग आमन्त्रित हुए। वहाँ पंजाब के माननीय शिक्षा-मन्त्री सरदार नरोत्तमसिंह से परिचय हुआ। उन्होंने कश्मीर पर पाकिस्तान के आक्रमण और पंजाब के विभाजन के समय की रोमांचकारी घटनाएँ सुनाई तथा सिक्कों की बहानुपु एवं विपत्तियों का भी विवरण कराया। यह देखकर बड़ा संतोष हुआ कि मध्यप्रदेश की सरकार से डॉक्टर रघुवीर को रहने और कार्य करने के लिए हर तरह का सुपाष मिलता हुआ है। एक अघिकारी विद्वान् को निरिचन्ततापूर्वक व्यवयन-मनन-अनुशीलन करने के लिए सम्मानपूर्वक छाटी सुविधाएँ देना किसी भी सरकार के लिए औरत और प्रतिष्ठ का कारण हो सकता है।

अन्तिम दिन छ-बनवरी की चायपान-मोटी में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र से भेंट हुई। पता लगा

कि प्रोफेसर नन्दबुकारे राजपेयी भी आये हुए हैं। वहीं निश्चित हुआ कि रात में मिमबी के निवासस्थान पर सब एकत्र हों। काशी के सुप्रसिद्ध प्रकाशक श्री नन्दकिशोर श्रवण की एक बुकाम नागपुर में है। पाण्डेय जी के साथ मैं भी बहाँ गया। बनारसी बूटी छनी और विषय मौजान भी हुआ। राजपेयीजी के बर्तन तो न हुए, पर मिमबी ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के साहित्यिक संस्मरण सुनाये। उन्होंने बतलाया कि शुक्लजी प्राकृतिक दृष्टियों के बर्तन के बड़े अनुयायी थे। उनका प्रकृति प्रेम सचमुच उनके निबन्धों में स्पष्ट झलकता है। वह विन्यासक की बनराधि का सौन्दर्य-निरीक्षण करते हुए बहुत दूर-दूर तक चले जाते थे और सुन्दर जनस्यतियों के संस्कृत-नाम भी बतलाते थे। एक बार आचार्य कदाचरसाद मिम के साथ पर्यटन करते हुए उन्होंने 'मैहवी' का संस्कृत नाम 'नल रंजनी' बतलाया था।

साठवीं शताब्दी को मध्याह्न के कलकत्ता मल से फिर पूर्ववत् रिजर्व डिब्बे में हम लोगों ने नामपुर से प्रस्थान किया। ठिकाने पहुँच पाण्डेयजी के एक बारकाड़ी मिम के बतलिये हुए। श्री बसन्तनाथ स्वामिमुन्दर शायद उस गद्दी का नाम था। जातिवेद्य सञ्जम भी राममोपाल हिम्मतसिंह पित्रोपकोष के मन्त्री थे। शाम को पित्रोपकोष (सँदपुर) बैचने मोटर से गये। गोरखिणी के रजिस्टर में किसी हुई सम्मतियों को पढ़ने लगा तो पूज्य मालवीयजी आदि के स्वागत देखकर मन में नामा प्रकार के भाव उत्पन्न किये। कितने ही मेटाबॉ साहित्यिकों और विद्वानों की हस्तलिपियाँ और गोरखा-सम्बन्धी सम्मतियाँ को प्रदर्शित करने के लिए कहीं सुरक्षित रखना चाहिए।

सौठवीं बार कलकत्ता में श्री बजरंगनाथ कोहिया का ग्रन्थ-संग्रह देखने का निश्चय पहली ही बार किया गया था। साठवीं जनवरी के अपराह्न में पाण्डेयजी के साथ उनके बहाँ पहुँचने पर अनेक दुष्प्राप्त ग्रन्थों के बर्तन हुए। कत वर्ष के अन्त में कलकत्ता के हिन्दी प्रेमियों ने कोहियाजी का अभिनन्दन किया था और एक धैर्यी भी उन्हें भेंट की गई थी। वह विशेष विधित नहीं हैं परन्तु प्राचीन महत्वपूर्ण दुर्लभ ग्रन्थों के संग्रह में ही उनके जीवन का प्रत्येक क्षण बीता है। फतहपुर (जयपुर)

नागपुर-यात्रा का सस्मरण

के सरस्वती-पुस्तकालय को उन्होंने बर्षातीय प्रथमों से पूर्ण समृद्ध कर दिया है। माननीय आचार्यजी को उन्होंने 'बिहापी-सतसई' की एक अत्यन्त प्राचीन मुद्रित प्रति सेंट की भी जो सम्भवतः लक्ष्मणरावजी के तिरुक्क से विनूयित और डॉ॰ शिपर्सन द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित थी।

उसी दिन हम लोग रात में दिल्ली एक्सप्रेस से पटना सौट चले। मशी बनबरी को प्रातःकाल पटना पहुँचने पर बड़ी बकाबट मामूम होने लगी। कन्या-विवाह की कार्य-व्यवस्था और कम्पनी यात्रा के अन्त में जो शान्ति आती है वह बड़ी मीठी और गाढ़ी नीद साम छाती है। उसे लौम पोड़ा बेचकर सोना कहते हैं।'

पंक्तियों में यह अमर लेख अंकित खोसा कि टण्डनजी ने हिन्दी-साहित्य के कल्पवृक्ष को अपने सरीर के एक-एक रक्तहिम्बु से सींचकर उसे पल्लवित पुष्पित और फलीकृत किया है। भात्र भी प्रत्येक सङ्ख्येय साहित्यिक व्यक्ति हिन्दी-हित-साधन में उनके आदर्श आत्मोत्सर्ग का स्मरण करके गर्व-गौरव का अनुभव करते हुए उनके त्यागपथ जीवन के समस्त गत मस्तक होता है।

सन् १९१४ में मुझे उनके प्रथम वर्णन का सौभाग्य लखनऊ के पाँचवें सम्मेलन में प्राप्त हुआ था। कबिचर पंडित श्रीचर पाठक उस अधिवेशन के अध्यक्ष थे। बाबू स्वामसुन्दर दास वहाँ कालीचरण हार्द स्कूल के प्रधानाध्यापक थे और उड़ी विद्यालय के प्रचलित प्रांगण में महोत्सव-मण्डप था। वहाँ के उस प्राचीन पङ्क म हिन्दी की सर्वभाषा हितोपणा और व्यापकता पर टण्डनजी का जो प्रभावशाली भाषण हुआ था वह समानत प्रतिनिधियों के बीच बराबर बर्षा का विषय बना रहा। कलकत्तावाले एकादश अधिवेशन में भी जिसके समापति डॉक्टर भगवान दाबजी के प्रतिष्ठित बंगीय विद्वान् सर वैशीप्रसाद सर्वाधिकारी ने जब सर्वभाषा के साहित्य की समृद्धि-वृद्धि का मुणवान करते हुए हिन्दी-साहित्य के अमार्शों पर अक्षतोप एवं श्रेय प्रकट किया तब टण्डनजी ने बड़ी औत्सुक्यता के साथ और संयत भाषा में उम्हें ऐसा सटीक उत्तर दिया कि टण्डनजी का भाषण समाप्त होते ही वह मौन धारण किये उठ खसे। हिन्दी की साहित्यिक सम्पत्ति का यथावत् मूल्यांकन करने वाला वह भाषण लक्षमुच मर्मस्पर्शी था। उस उपयुक्त अवसर की टण्डनजी की औत्सुक्यता श्रेय हिन्दी-मर्मियों का हृदय नर्बोत्साह से स्पन्दित होने लगा। उम्होंने हिन्दी के साहित्यिक ऐश्वर्य का विचार वर्णन करते हुए कहा था कि कौच के चमकीले टुकड़ों की अक्षय्य पत्रियाँ भी एक अमूल्य रत्न की बराबरी नहीं कर सकती—ग्रन्थों की संख्यावृद्धि से ही कोई साहित्य बमबधाली नहीं हाता—परमोच्च कोटि के दो-चार ही लोकप्रिय ग्रन्थ किसी साहित्य को महिमा-मण्डित कर सकते हैं—हिन्दी का रामचरितमानस अकेला ही अल्प भाषाओं के अल्प-समुदाय से बड़ा-बड़ा है—अपने प्राचीन साहित्य के बल पर हिन्दी विश्व-साहित्य के सामने भी अपना निर ऊँचा कर

सकती है।

बलुठ बहु भाषण रेकड करन याम्म बा । मीने तो उसका मतिपय संलिप्त बाधय-भाय यही लिखा है । उनके इस प्रकार के अनेक भाषणों की चर्चा करने के लिए यहाँ स्थान ही नहीं है । हिन्दी के निमित्त हुए उनके भाषण यदि लिपिबद्ध और संगृहीत होते तो साहित्य की एक समृद्ध लिपि होते ।

यदि यह कहा जाए कि हिन्दी टण्डनजी की सौम है तो अस्पृष्टि न होनी । यह चर्चा नहीं चाह जिस परिस्थिति में रहे उनके विपन्न का विषय हिन्दी-हित ही रहा और किसी प्रकार हिन्दी उनके ध्यान से न हटती । जब वह विधान-मन्त्रा के अध्यक्ष के कारिस के समापति से केन्द्रीय संघर्ष में घ- कही हिन्दी का न भूले । हिन्दी के लिए उन्होंने राष्ट्रपतित्व तक को त्याग दिया । अपमान का भी ध्यान छोड़कर हिन्दी का मजारी पर ही नियाह रचना उन्हीं के समान बीवधाय तपस्वी का काम है ।

उन्होंने भारतीय संस्कृति-सम्मेलन की स्थापना करने स्वदेशवासियों के नैतिक उत्थान का जो प्रयास किया वह भी उनक उपामय जीवन का एक मुख्य प्रसंग है । उस मुख्य सम्मेलन की प्रामाणिक पहिला 'भारतीय संस्कृति' और उसके वायिक अधिवेशनों के समापतियों के मापना से साहित्य की जो श्रीकृष्टि हुई है वह उपधनीय नहीं है । उदाहरणार्थ डॉक्टर जगबानुशाम का भाषण भारतीय संस्कृति का स्फटिक-स्वच्छ स्वरूप प्रदर्शित करकेबाका एक समूतपूर्व निबन्ध है । उनक सम्मेलन से मिले-जुले विद्वानों द्वारा सांस्कृतिक साहित्य तैयार करने का सर्वसायिक श्रेय टण्डनजी को ही है ।

दुर्भाग्यवत् सन् १९५४ में राजवि टण्डनजी पटना पयाने और बिहार सरकार के विन-मन्त्री डॉक्टर अनुप्रहृण-रायगनिह (अब स्वर्गीय) के मतिवि हुए । मैं स्टेशन पर उनके स्वागतार्थ गया था । चरण-स्पर्श करत समय उन्होंने सहसा मुझे नहीं पहचाना । जब निवासस्थान पर उनको पता चला तब वह बोपहर के समय अचानक बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के कार्यालय में मुझे काफीबाध बेने के लिए पहुँच गए । कहते कम कि मैंने भीड़ में तुम्हें पहचाना नहीं जब तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है ? मैं उनका

सौहार्द और सौजन्य वेस बकाक रह गया। उनकी सेवा में परिपक्व की पुस्तकें वरावर भेजता ही रहता था। जो नई छपी पुस्तकें सेप भी उन्हें समर्पित कर आशीर्वाद की याचना की तो भाव-विभार होकर ग्रन्थ-प्रकाशन की सहायता करने लगे। फिर दूसरे ही दिन बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अन्तर्गत मेरी स्वर्गीया बर्मापत्नी के नाम पर जो 'बन्धनदही साहित्य-सोप्री' स्थापित हुई उसका उद्घाटन करते हुए उन्होंने अपने भाषण में साहित्य-सेवा के लिए निष्पक्षक चरित्र की अनिवार्य आवश्यकता पर ही विशेष बल दिया। उनका प्रत्येक वाक्य उनके अन्तस्तर का दर्पण था।

उनकी अमूल्य स्मृतियों में है वे कुछ बिगरे फूल चुनकर मैं आज उनके आराध्य धरणा पर सविनय यज्ञामुमनाञ्जलि समर्पित करते हुए उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। परमात्मा उन्हें शिरायू करके हिन्दी को सपूती बनी रहने दी यही मेरी आन्तरिक प्रार्थना और शुभ कामना है।^१

राजर्षि टण्डन आदर्श चरित्र की प्रतिमूर्ति थे

राजर्षि टण्डनजी राष्ट्रभाषा हिन्दी के अग्रिणीय मन्त्र प। हिन्दी के कृत संकल्प पृथ्यापक होने के कारण ही वह राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय होने को विवश कर दिये गए। यदि हिन्दी के विरस्तार का हकीका उनके हृदय पर लगावदार चोट न करवा तो वह अभी दम न छोड़ते। अन्तिम समय में जब वह रोगरोगों पर असमर्थ पड़े थे हिन्दी पर व्यथाय होते देख-सुनकर भीतर-ही-भीतर पुसते रहे। उनको हिन्दी प्राणां स भी प्यारी थी। उसी के लिए उन्होंने साहित्य-सम्मेलन में महारामा घोषी के सम्बन्ध-विच्छेद का बसबस दुःख सहन किया। उसी के लिए वह देश के वर्धधारों की जाँचों के जाँग बने। भारतीय सविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद उन्हीं के अत्यक्त प्रयास से मिटा पर अपनी परम प्यारी

१. अन्तरिम : २६ अक्टूबर १९६०—सांवाहिक भाग (राजर्षि पुस्तोत्सवदात टण्डन अभिनन्दन परिशिष्ट) प्रकाश।

हिन्दी को जिस रूप में प्रतिष्ठित देखना चाहते थे, उस रूप में उसे उन्हें नहीं देखने दिया गया। उनके अपूर्व त्याग का तिरस्कार हुआ। उनकी बंदनीय सेवा और तपस्या का तिरस्कार हुआ। जब से इस स्वतन्त्र हुआ तभी से यह हिन्दी के अनुविन अम्बुदब के मुनहर्ष सपने देखने लगे। हिन्दी के हितार्थ उनके मन में जितनी बाधाएँ और कल्पनाएँ थीं वे यदि सफल तथा साकार हुई होतीं तो निश्चय ही यह सत्यायु होते। उनके सपनों का महत्त्व निर्ममता से इहामा गया। उनके देहावसान के बाद यह कठोर सत्य प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी के समक्ष आज प्रत्यक्ष हो उठा है। कोई सत्य को मन्ने ही जब न माने न कहे-सुने पर यह सवपा निश्चिन्त है। हिन्दी साहित्यसेवी अपनी अन्तःपारमा से पूछने पर संभव ही इसका साक्षात्कार कर रहे हैं आज।

प्रत्येक व्यक्ति सच्चाई के साथ सीधे-समझकर अनुमान कर सकता है कि जिस हिन्दी को उत्सव अपने प्राणों से भी बढ़कर प्रिय मानते थे, उसको अपनी बुझी बाँधों से अपदम्य होते देखकर उन्हें कौसी मर्मवेदना हुई होगी। उनकी मानसिक व्यथना की कल्पना भी मर्मवेधी जान पड़ती है। यौन रहकर यह हिन्दी के प्रति अपने राष्ट्र का दृष्ट देखते रहे। जब उनकी बाधित सीस चक रही थी तब आकाशवाणी की विकृत हिन्दी का बच्चा पाठ उनके अर्बुर हृदय को और भी बुर बुर कर गया। चकटे चकटे भी साम्प्रि की अनुभूति नहीं होने पाई। जिसके कर्नेजे पर बार-बार वृत्तिक रंध हो उसकी पीड़ा और अस्वामि की बाहू पाना इस हृदयहीन युग के लिए सम्भव नहीं।

विगत वर्ष महाकवि निरुद्धा को देखने में प्रमाण गया था। उसी समय उत्सव के वचन करने भी दया। उनके पास वरिष्ठ मौखिकम्त्र मर्मा बैठे हुए थे। साहित्य-सम्प्रेषण की चर्चा छिड़ी थी। चर्माधी से यह कमी-कमी कुछ क्षणों में बोलते थे। अन्त्य मन्त्र स्वर उनकी अशक्तता का द्योतक था। रेष में हिन्दी की परिचिति सुनकर जनका मुहमन्त्रक निवण हो गया। पक्ष्य पर यह मसतक के सहारे बैठे थे। हिन्दी का हाव मुन्ते-मुन्ते यह सीस भींचकर लेंट था। बाहिने हाव की बंगुकिर्मों को भाङी-विराधी करके घुम्य में हिंसा दिया और धाँस मूँद थी। उनकी

रमी हुई थी।

उनकी कल्पना में हिन्दी का जो उज्ज्वल भविष्य था उसको वह अपने जीवनकाल में प्रत्यक्ष न देख सके। हिन्दी के लिए वह जैसे रंजीत सपने बेचा करते थे वैसे सपनों को भी साकार होते न देख पाए। मरते वक्त तक उनके कलेबे पर हिन्दी की उल्लास की चोट बज्रवर्ती-महर्ती रही। अन्तिम क्षणों में भी उनके प्राण घामिष्ठ का अनुभव न कर सके। हिन्दीवालों को अपने सर्वश्रेष्ठ नेता की ऐसी कारुणिक विवसता कभी भूल नहीं सकती। स्वामासिक मृग्यु तो इस मरत्यौक का सहज धर्म ही है किन्तु ममवादी पम्पना से ब्यस्य रहकर बुझते-भुझते मरना बड़ा हृदयवेधी होता है। इसीलिए हम हिन्दीवालों को किसी तरह धीरज नहीं बँवता।

टण्डनजी भारत राष्ट्र के स्वतन्त्रता-संग्राम के एक प्रमुख सेनानी थे। उन्हें अपनी सेनानी से हिन्दी की विशेष सेवा करने का अवसर नहीं मिल पाया पर अपनी बाधी से उन्होंने हिन्दी की अपूर्व सेवा की। अतिरिक्त-भाषीय हिन्दी-साहित्य-सम्प्रेषण के बड़े सजग प्रहरी थे। आप उन्हें उसका प्रतिपादक पिता सम्पोषक संरक्षक अथवा संबद्धक जो कुछ भी कहें, उनके लिए उपयुक्त होगा फिर भी कम ही होगा। उन्होंने उसके माध्यम से हिन्दी-हितार्थ जो प्रकाशात्मक और रचनात्मक कार्य किये कराये हैं, वे ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। मद्यपि 'मिथिलानुचिन्ता' के अतिरिक्त हिन्दी के अग्याम्य साहित्यिक इतिहासों में उनकी स्पृहणीय हिन्दी-सेवा का यथोचित बर्णन नहीं पाया जाता—और 'विनोद' में भी साधारणतया उल्लेख-भाव ही है—उपापि साहित्यकाण्ड की दिव्योद्भवल मदाप्र-वक्तियों में यह अमर लेख अंकित रहेगा कि टण्डनजी ने हिन्दी भाषा के कल्पवृक्ष को अपने गरीर के एक-एक रक्तबिन्दु से सींचकर उसे पस्त्रित पुष्पित और फलित किया था। आज भी प्रदेशक सहस्रय साहित्यिक व्यक्ति हिन्दी-हित-नापन में उनके आदर्श आत्मोत्सर्ग का स्मरण करके सब-यौरेक का अनुभव करते हुए उनके त्यागमय जीवन के ममन नमस्तक है। त्याग और तप की दृष्टि से वह हिन्दी-जगत के महात्मा भापी थे।

सन् १९१४ म मुज उनके प्रथम वर्जन का सीमाव्य क्कनक के पीछे भारतीय साहित्य-सम्बन्ध में प्राप्त हुमा था । कबिबर पंदिठ श्रीबर वाठक उस महाविदेसन के अध्यक्ष थे । बाबू स्यामनुन्दर हासबी वही कालीचरण हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक थे । उही विद्यालय के प्रथम प्रान्त में महात्मन-सम्बन्ध था । उरू के उस प्राचीन पद में हिन्दी की सर्व माया-हिन्दीपना और व्यापकता पर टण्डनजी का जो प्रभावशाली भाषण हुआ था वह समागत प्रतिनिधियों के बीच बराबर चर्चा का विषय बना रहा । उर्दू-प्रेमी भाइयों ने उही समय एक छास बना करके अपने जो भवोभाव व्यक्त सिदे थे उनमें से एक-एक बात का ब्याय उत्तर टण्डनजी ने अपने दूसरे दिन के सावजनिक भाषण म ऐसी मिठस क साम दिया कि उर्दू के हिमायती विद्वान् उनसे प्रतिनिधि-सिबिर में मिसन और बुझिया बदा करने प्यारे थे । वह उर्दू के बिराधी नहीं थे उसे तो वह हिन्दी की ही एक विधिष्ट ऐसी मानते थे । उनके अनेक भाषणों म भाषा-सम्बन्धी उनके सदार विचार सुने जा चुके हैं । उस समय भी उन्होंने कहा था कि हिन्दीबाळे अलगिनद करबी-कारसी चरणों का पचाये हुए हैं पर उर्दूबाळे अप्रबन्धित और दुग्ध चर्या से अपनी भाषा को निरुष्ट और बासिठ बनाकर हिन्दी से उये अप्य करते जा रहे हैं । फिर एत में सम्बन्ध क पछास म कबिबर राय देवीप्रसाद 'पुन' ने हिन्दी पर किये गए उर्दूबाळों के आरोपों का पछबठ उत्तर पेश बिनोरपुन बंग स दिया था कि उनके बाधुबिल का बमत्कार देख कितने ही उपसिबठ उर्दू प्रेमी बन्धु 'बाह-बाह' कर उठे थे । टण्डनजी और पुर्नजी ने उर्दू के किले में हिन्दी का लम्बा फइपया तथा उर्दू के सामे हिन्दी ने भी होस्ती का हाथ बढ़ाया ।

पुन मखिळ-मारीय हिन्दी-साहित्य-सम्बन्ध के ही कलकत्ताबाळे एकदश बरिबेजम में भी विषक बभापति डॉक्टर मयबानदाब दे प्रतिपिठ बंभीय विद्वान् सर देवीप्रसाद सबोबिकापी ने बब बंप माया के साहित्य की सपृठि-बृद्धि का पुनदान करते हुए हिन्दी-साहित्य के बभाओं पर असम्भाव तथा और प्रकट किया तब टण्डनजी ने बड़ी मान्यता के साथ और संभव माया से उर्दू एसा सटीक उत्तर दिया कि टण्डनजी क

भाषण समाप्त होते ही वह मौन धारण किये उठ बैठे। हिन्दी की साहित्यिक सम्पत्ति का मयार्थ मूल्यांकन करनेवाला वह भाषण सचमुच मर्मस्पर्शी था। उस उपयुक्त अवसर की गणनजी की तेजस्विता वल हिन्दी प्रेमियों का हृदय गर्वोन्मास से स्पन्दित होने लगा। उन्होंने हिन्दी के साहित्यिक ऐश्वर्य का विषय बचन करते हुए कहा था कि 'काँच के बमकीले टुकड़ों की असंख्य राशियाँ भी एक अमूल्य रत्न की वजहसे नहीं कर सकती—एम्बों की संख्या-वृद्धि से ही कोई साहित्य बमबघाती नहीं होता—परमाण्व कोटि के बो-चार ही लोकप्रिय ग्रन्थ किसी साहित्य को महिमा-मण्डित कर सकते हैं—हिन्दी का 'साम्बरितमानस' अकेला ही अन्य भाषाओं के ग्रन्थ-समुदाय से सोहा सं सकता है—अपने प्राचीन साहित्य के बल पर हिन्दी-विश्व-साहित्य के सामने भी अपना सिर ऊँचा कर सकती है।" फिर सम्मेलन के बाहर की सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए उन्होंने बंगला और हिन्दी के साहित्य का जो तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया था वह भी उनकी गहन अध्ययनशीलता का ही परिचायक था। हिन्दी के आरू साहित्य पर बंगला का प्रभाव स्वीकार करते हुए उन्होंने बंगला के काव्य-साहित्य पर भी विद्यापति कबीर, मीरा आदि भक्त और अन्य हिन्दी-कवियों के स्पष्ट प्रभाव का समभाव संकेत किया था जिसे मुनकर 'बारोपा-दफतर' के सम्पादक भी कार्तिकेय शरद मुनोपाध्याय (अब स्वर्गीय) ने टिप्पणजी के स्वाभ्याय की गम्भीरता पर आश्चर्य प्रकट करते हुए मुख्य स्वर में कहा था कि ऐसे ही समन्वय वाली किन्नाहू अपनी एकता-विधायिनी बाणी से बंगीय साहित्यसचियों के हृदय पर हिन्दी का छिद्रका जमा सकते हैं। टिप्पणजी हिन्दी के पक्ष में भी दुराग्रही नहीं थे पर हिन्दी की महत्ता के प्रतिपादन में उनके बुक्तियुक्त तर्क बड़े अचूक होते थे। कोई प्रचण्ड तार्किक भी उनसे हिन्दी की हीनता नहीं स्वीकार कर सकता था। वह तो स्वयं ही समस्त भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी का सौहार्द स्थापित करना चाहते थे। हिन्दी-विषयक उनके भाषण वस्तुतः रेकॉर्ड करने योग्य होते थे। उनके भाषण यदि संकलित और प्रकाशित हो सकते तो निश्चय ही साहित्य की अमूल्य निधि होते।

भारतीय साहित्य-सम्मेलन के प्रत्येक अधिवेशन में टण्डनजी अनिवार्य रूप से सम्मिलित होते थे। उनके मंच से उनके मापक जिन लोगों ने सुने हैं वे लोग भाव भी अनुभव कर रहे होंगे कि हिन्दी की समस्याओं पर इसी उन्मत्ता और हृदयमत्ता के साथ हृदयघाही मापक करतेवाले जब इन्ने-मिने ही हैं। चाहे वह बहू-कहीं-कहीं जिस-किसी परिस्थिति में रहे हिन्दी पर ही उनका ध्यान केन्द्रित रहा। जब वह उत्तर प्रदेश में विद्याम समा के अध्यक्ष थे कांग्रेस के समापति व केन्द्रीय सचिव में थे काका साहयराय की पीपुस्व-सासाइटी के प्रधान थे, भारतीय संस्कृति सम्मेलन के संयोजक थे कहीं भी हिन्दी उनके ध्यान से न उठती। हिन्दी के लिए ही उन्होंने महान्-से-महान् पर को त्याग दिया। अपना का भी ध्यान छोड़कर हिन्दी की सलाई पर ही निमाह रचना उन्हीं के समान बीतराग तपस्वी का काम था। उनकी दिनचर्या भी तपस्वियों और ऋषियों के समान ही थी। दिल्ली में भारतीय संस्कृति-सम्मेलन की स्थापना करके उन्होंने स्वदेशवासियों के नैतिक उत्थान का जो प्रयास किया वह भी उनके तपोमय जीवन का एक मुख्य प्रलय है। उस सत्ता की त्रमासिक मुक्तपत्रिका 'भारतीय संस्कृति' और उसके वार्षिक अधि-वेद्यों के समापतियों के मापकों से हिन्दी-साहित्य की जो द्रष्टिकम्बित भीकृति हुई वह उपेक्षणीय नहीं है। उदाहरणार्थ, डॉक्टर जनबानबासजी का मापक भारतीय संस्कृति का स्फटिक-स्वच्छ स्वरूप प्रदर्शित करने-वाला एक अकूतपूर्व निबन्ध है। उक्त सम्मेलन से परिमित परिमाण में ही सही जिने जुने अधिकारी विद्वानों द्वारा सांस्कृतिक साहित्य तयार कराने का सर्वाधिक योग टण्डनजी को ही है। एक बार मुझे दिल्ली जान का अवसर मिला तो उनके दर्शन का भी शौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे मित्र वंदिता चंद्रारत्न्य धर्मा 'सारस्वत' बहू भारतीय-संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान-मन्त्री और 'भारतीय संस्कृति' के सम्पादक भी थे। बड़ी मुझे उनकी सेवा में लगे पए। प्रायः परिचित व्यक्ति से भेंट होने पर बड़े लोग भी सम्बद्ध कार्यकलाप जबका जीवन की गतिविधि के सम्बन्ध में पूछताछ करते हैं पर टण्डनजी वे बिहार में हिन्दी की प्रगति के विषय में ही जानना चाहा बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और बिहार-राष्ट्र

भाषा-परिषद् की साहित्य-सेवा की ही बातें कहते-सुनते रहे। वर्तमान वैज्ञानिक युग के नाम पर भारतीय संस्कृति के प्रति आधुनिक युग की उदासीनता से वह चिन्तित जान पड़े और उनकी बातों से यह भी ध्वनित हुआ कि भारत की राजधानी दिल्ली में भारतीय संस्कृति-सम्बन्धी साहित्य का एक सुसंवाहित प्रचार-केन्द्र होना अत्यावश्यक है। किन्तु ईश्वर की ऐसी इच्छा कि सारस्वतजी भी उनसे पहले ही सवार होड़ गए। वही टण्डनजी की प्रेरणा और सहायता से उक्त संस्था और पत्रिका जन्माते थे।

हिन्दी-वचन को मज्जी भाँति विदित है कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी आजीवन साहित्य-सम्मेलन से उदासीन और लटस्य रहे। उनको सम्मेलन का समापति बनाने के लिए अनेक बार प्रयत्न हुए, पर कभी उन्होंने समापतित्व स्वीकार नहीं किया। सम्मेलन के अधिवेशनों में सम्मिलित होने से भी वह विमुख रहे। किन्तु हिन्दी के सर्व्व सचक की साहित्य-सेवा के प्रति उनके हृदय में पर्याप्त आदर-मान था। इसी कारण जब बाबू स्यामसुन्दरदास प्रयाग में छठे सम्मेलन के समापति हुए तब द्विवेदीजी उक्त में सहर्ष पचारे। बाबू साहब के साथ उनका मठभेद अब जाहिर था; फिर भी वह बाबू साहब की अनिर्बन्धनीय हिन्दी-सेवा के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने की भावना से अधिवेशन में निस्संकोच उपस्थित हुए।

मैं भी उस महोत्सव में उपस्थित था। वह कामा रामप्रसाद के साथ में हुआ था। उस वर्धनीय समारोह में भारतेन्दु-मन्था पंडित बदरीनाथपत्र कीपटी 'प्रेमपत्र' भी आय थे। उस समय के सामयिक पत्रों में यह बात छपी थी कि द्विवेदीजी के हृदय में स्यामसुन्दरदासजी की हिन्दी-सेवा के लिए जो प्रतिष्ठा थी उसी को प्रकट करने की इच्छा से वह सबविदित समनस्य को विस्मृत कर सम्मेलन में चले आए। फिर उस समय के कई साल बाद जब सम्मेलन का अधिवेशन कामपुर में हुआ तब भी समापतित्व के लिए द्विवेदीजी से आग्रह किया गया था। पर उनका संकल्प तो धम्मु-सद्यसन-मरुष बटल था। जब टण्डनजी उसके समापति बनाये गए। उस बुक के पत्रा के पाठकों को यह स्मरण होया कि टण्डनजी

के निर्वाचन को सार्वभौमिक समर्थन प्राप्त हुआ था। जब द्विवेदीजी को टण्डनजी के मनोनयन का समाचार मिला तब वह बरपन्थ प्रसन्न हुए। इतना ही नहीं जब उनके स्वागतार्थक होने के लिए निवेशन किया गया तब सम्मेलन की छत्रछाया में किसी प्रकार का कोई पर बागीहान न करने की अपनी प्रतिज्ञा को विचारकर वह स्वागतार्थक बन गए। उन दिनों के पत्र-पाठकों को स्मरण होगा द्विवेदीजी ने स्पष्ट कहा था कि सम्मेलन के मध्यम में कोई पदाधिकारी होकर प्रवेश करना मेरे मिटान्त के विरुद्ध है पर जब टण्डनजी सभापति होकर हमारे नगर में आ रहे हैं तब उनका स्वागत करना मेरा कर्तव्य है क्योंकि हिन्दी की मातृभार्यापी बनाने में उनका अनुरोध प्रयत्न प्रत्यक्ष हिन्दी-हिन्दी के लिए बन्दनीय है। बाबुलिक पाठकों को भी आठ होगा कि द्विवेदीजी बहुत दिनों तक कुड़ी (कालपुर) में रहे थे जहाँ उनका कर्माधिकार प्रेस भी था और उनका यह पता 'सरस्वती' में भी बराबर छपता रहा। उनका वह स्वागत-आपन इष्टम्भ है, जिसमें टण्डनजी के प्रति उनके उदात्त उद्गार संकित हैं।

बुधवार सन् १९२४ में टण्डनजी पटना पधारे थे। बिहार राज्य के वित्त-मन्त्री डॉक्टर अनुपमहाराजवर्मा (अब स्वर्गीय) के अतिथि हुए। मैं स्टेशन पर उनके स्वागतार्थक गया था। वह मयलीक आया था। बरपन्थ स्वयं कुछ समय उन्होंने भीड़ में सहमा मुझे नहीं पहचाना। विद्यामस्थान पर जाइलें मेरा हाथ पुरुष और जब माकूम हुआ कि स्टेशन पर मैं भी मौजूद था तब बोधपुर की कड़ी धूप में ही अचानक बिहार राज्यवाया परिपत्र के कार्यालय से मुझे बाधीवति देने के लिए पहुँच गए। कहने लगे कि 'मैंने भीड़ में तुमको पहचाना नहीं क्योंकि चरमा नहीं था। तुम्हारी यह परिपत्र हिन्दी की अच्छी सेवा कर रही है, अब तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है? मैं उनका आकस्मिक पुनापन और मोहार्थ तथा सोचम्य रेश बचाक रहे बना।

मैं मन्थार, सन् १९१० में निरुत्साही का रूपमें प्रमाण गया था। मिश्रवर पं० बाबलवति पाठक के साथ टण्डनजी के दर्शन करने भी गया। सम्मेलन के पूर्व प्रमाण-मन्त्री पं० मौलिकन्ध रामों बहुत विरुजबान थे। सार्वांगी उनसे अर्था कर रहे थे कि सम्मेलन का उद्धार हीम ही होने

भाषा-परिषद् की साहित्य-सेवा की ही बातें कहते-सुनते रहे। वर्तमान वैसायिक युग के नाम पर भारतीय संस्कृति के प्रति आधुनिक युग की उदासीनता से बहू चिण्टित जान पड़े और उनकी बातों से यह भी ध्वनित हुआ कि भारत की राजधानी दिल्ली में भारतीय संस्कृति-सम्बन्धी साहित्य का एक सुसंवाकित प्रचार-केन्द्र होना अत्यावश्यक है। किन्तु ईश्वर की ऐसी इच्छा कि धारस्वतजी भी उनसे पहले ही संसार छोड़ गए। बही टखनजी की प्रेरणा और सहायता से उक्त संस्था और पत्रिका बनते थे।

हिन्दी-जगत् की मज्जी भाँति विदित है कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी आजीवन साहित्य-सम्मेलन से उदासीन और टण्डर रहे। उनके सम्मेलन का समापति बनाने के लिए अनेक बार प्रयत्न हुए पर कभी उन्होंने समापतित्व स्वीकार नहीं किया। सम्मेलन के अधिवेशनों में सम्मिलित होने से भी बहू विमुख रहे। किन्तु हिन्दी के सच्चे सेवक की साहित्य-सेवा के प्रति उनके हृदय में पर्याप्त जादर भाव था। इन्ही कारण जब बाबू दयानन्ददास प्रयाग में छठे सम्मेलन के समापति हुए तब द्विवेदीजी उस में सहर्ष पचारे। बाबू साहब के साथ बनरस मतभेद जाग जाहिर था। फिर भी बहू बाबू साहब की अमिर्बजनीय हिन्दी-सेवा के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने की भावना से अधिवेशन में निस्वकीच उपस्थित हुए।

मैं भी उक्त महोत्सव में उपस्थित था। बहू आसा रामप्रसाद के जाग में हुआ था। उक्त बसंतीय समारोह में मार्लेनु-सदा पब्लिश बहरीनाउमम चौधरी 'प्रेमपत्र' भी जाये ब। उस समय के सामयिक पत्रों में यह बात छनी भी थी कि द्विवेदीजी के हृदय में दयानन्ददासजी की हिन्दी-सेवा के लिए जो प्रतिष्ठा थी उसी को प्रकट करने की इच्छा से बहू सबविधित बमनस्य को विस्मृत कर सम्मेलन में चले जाण। फिर उस समय के कई साल बाद जब सम्मेलन का अधिवेशन कानपुर में हुआ तब भी समापतित्व के लिए द्विवेदीजी से जाग्रह किया गया था। पर उनकी संजस्य तो सम्भु-सपतत-सहस्य अटक था। अतः टखनजी उक्त समापति बनाय गए। उस युग के पत्रों के पाठकों को यह स्मरण होना कि टखनजी

के निर्वाचन की सार्वदेशिक समर्पण प्राप्त हुआ था। जब द्विवेदीजी को टण्डनजी के मनोनयन का समाचार मिला तब वह अत्यन्त प्रसन्न हुए। इतना ही नहीं जब उनके स्वागतार्थ्य होने के लिए निवेदन किया गया तब सम्मेलन की छत्रछाया में किसी प्रकार का कोई पर अंगीकृत न करने की अपनी प्रतिज्ञा को विचारकर वह स्वागतार्थ्य बन गए। उन दिनों के पत्र-पाठकों को स्मरण होगा द्विवेदीजी ने स्पष्ट कहा था कि सम्मेलन के मध्य में कोई पत्राधिकारी होकर प्रवेश करना मेरे सिद्धान्त के विरुद्ध है पर जब टण्डनजी समापति होकर हमारे तन में आ रहे हैं तब उनका स्वागत करना मेरा कर्तव्य है क्योंकि हिन्दी को भारतव्यापी बनाने में उनका अपीरक-अपरक प्रत्येक हिन्दी-हिन्दी के लिए बन्धीय है। आधुनिक पाठकों को भी ज्ञात होगा कि द्विवेदीजी बहुत दिनों तक चूरी (काठपुर) में रहे थे वहाँ उनका 'कर्मचिन्तक प्रेस' भी था और उनका बहु पत्र 'सत्यवती' में भी अत्यन्त अत्यन्त रहा। उनका वह स्वागत-आपन इष्टम्भ है जिसमें टण्डनजी के प्रति उनके उदात्त उद्गार अंकित हैं।

जुलाई १९१४ में टण्डनजी पटना पधारे थे। बिहार राज्य के मित्त-मन्त्री डॉक्टर अनुपहनायकसिंह (जब स्वर्गीय) के अतिथि हुए। मैं स्टेशन पर उनके स्वागतार्थ्य गया था। वह सपत्नीक आये थे। अरब स्पष्ट करते समय उन्होंने भीड़ में सहसा मुझे नहीं पहचाना। निवासस्थान पर उन्होंने मेरा हाथ पृथक् और जब मासूम हुआ कि स्टेशन पर मैं भी मौजूद था तब बोधहर की कड़ी धूप में ही अचानक बिहार राज्यपरिषद् के कार्यालय में मुझे आसीर्षित देने के लिए पहुँच गए। कहने लगे कि "मैंने भीड़ में तुमको पहचाना नहीं क्योंकि अस्मा नहीं था। तुम्हारी यह परिषद् हिन्दी की अच्छी सेवा कर रही है, जब तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है ? मैं उनका आकस्मिक पुयावमन और सीधार्थ तथा सौजन्य देख अवाक रह गया।

मैं नवम्बर, १९१० में मिराबाजी को देखने प्रयास गया था। मिनबर १०. बाणस्पति पाठक के साथ टण्डनजी के वर्धन करने भी गया। सम्मेलन के अतुपूर्व प्रधान-मन्त्री १०. मीसिचन्द्र धर्मा वहाँ निरजमान थे। धर्माजी उनके अर्थात् कर रहे थे कि सम्मेलन का अद्वार सीध ही होने

जा रहा है। वह प्रथम-मुद्रा में थे, पर साँधों में ही बोलते थे। जब हिन्दी की वर्तमान स्थिति पर बातें होने लगीं तब उनका बुद्धमण्डल विचलन हो गया। उनके बहरे की घिराएँ तन गईं—बैठे बो बो दो कम्पनी साँध सीध कर सट गए। उनके दिव्य का दर्द पग्यकर पाठकजी ने कहा भी कि अब आप इन साँध चिन्ताओं से मुक्त हो जाइए। किन्तु वह जीवनमुक्त महापुरुष हिन्दी की चिन्ता में ही घलत लखीन रहकर संसार से ही मुक्त हो गया। क्या उनको बातों से समझाकर कोई आवश्यक कर सकता था ? उनको विश्वास न था कि जिस राष्ट्र की सेवा में उन्होंने अपना जीवन होम दिया वही राष्ट्र उनकी भावना को ठेस पहुँचाएगा। वह अपने अर्थ में कर्मयोगी और कर्मवीर पुरुषोत्तम थे पर साहित्यिक रूचि के अनुप्य होने के कारण उनकी भावना बड़ी मुकुमार थी। हिन्दी को अपने ही घर में अपरस्व होते देखकर वह बेचारी मुकुमारी छटपटाकर अथाह में डूबती हुई-सी उनके प्राणों को बसती रही और अन्त में उन्हें ले ही डूबी।^१

१. ज्ञान : २६ फरवरी, १९९२।

पत्राचार : १९ सितम्बर १९९२— साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में हिन्दी।

श्री राजा राविकारमणजी

सूर्यपुत्र (घाहाबाब) के श्रीमान् राजा राविकारमण प्रसाद सिंह हिन्दी-संसार के सम्प्रदीप्ति कथाकार और उपन्यासकार हैं। वह पचास वर्षों से हिन्दी-साहित्य की सेवा में संलग्न हैं। उनकी कहानियाँ और उनके उपन्यास हिन्दी के कथा-साहित्य में अपने रंग-रंग के अनुरूप-गीत हैं। उनका तथा हुआ संस्मरणात्मक साहित्य भी हिन्दी में अपूर्व ही है। उनकी भाया-सखी हिन्दी में विशिष्ट निरासी है। वह माया के स्वप्न को बड़े मनोमौल्य से पढ़ते और संभाषते हैं तथा उसमें नरकायी और मन-बड़ाई भी करते बचते हैं। उनकी रचनाओं के पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि माया तथा बोधी की तरह उनके माये हाथ जोड़े लड़ी रहती है।

राजा साहब अब सत्तर वर्ष के हो चके हैं। अपने कन्वे जीवन में उन्होंने जन्मा प्रकार की परिस्थितियों से गुजरने के अवसर पाये हैं। अतः उनके लौकिक अनुभव बड़े परिपक्व और ठोस हैं। उन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में उनकी चिंतनशक्ति अपने स्वर्ग की श्रेणी है। उन्हें समस्कारपूर्ण अनिर्णयन-कीर्णक प्रदर्शित करने का ऐसा धौक है कि दिन रात अपनी रचना में वेक-कूटे उधाने की पुनः में ही मस्त रहते हैं। माया में कधीवा काइना छुटा नहीं है। इसके लिए मुहावरों की बन्धन का अन्वय और मूर्च्छियों की मूस-बूम तथा मनोमौल्य भाव की भाव में यहूदई तक बँलने की शक्ति चाहिए। कलाकार को यह शक्ति विस्तारशीलता और लक्ष्मीनता से प्राप्त होती है। यही उनके स्वाभाविक गुण हैं।

जिन राजा साहब को सबसे पहले सन् १९०२ में देखा था। मैं विश्व हार्निक म पढ़ता था उसके पिछवाड़े की कोठी में ब बोलों मार

रहते और भाग बिना-झूठ में पड़ते थे। जिस धानदार किन्नर पर वे भोग सूख जाते-जाते थे उसमें हो मस्ताने कास बोड़े जुते रहते थे। विनकी फरफराती हुई नौठियाँ और मस्ती की भंग-भंगी बेसने के लिए पथिक भी ठिठक जाते थे। दोनों भाइयों की एकरूपता किलोपवस्था की सुन्दरता तथा राजसी वेद्यभूषा की घोषा हम स्तुती लड़कों के लिए बड़े कृतबुद्ध की बस्तु थी।

जहाँ तक स्मरण है, सन् १९२० में बिहार-मादेसिक-हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का दूसरा महाविद्येयन बेठिया (बम्भारन) में हुआ था। उसके समापति राजा साहब ही थे। उनके साथ भाग नगर के कई साहित्यसेवी बेठिया गये थे। पंडित ईश्वरप्रसाद शर्मा पंडित रामरहित मिश्र पंडित पारसनाथ त्रिपाठी आदि के साथ मैं भी गया था। राजा साहब सबको अपने साथ प्रथम बोधी के द्विन्द्वे में ले गए थे और बेठिया के राजमहल में सबको अपने साथ ही ठहराया था। उसी समय उनसे निकट सम्पर्क स्थापित हुआ। यह राज्य के अतिथि थे। स्टेपन से राजमहल तक समापति का जो जुलूस चला उसमें बेठिया-जैसे प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित राज्य का बैसक पूर्ण रूप से प्रदर्शित था। सम्मेलन के किसी कार्यक्रम अतिबेसन में बैसा भव्य जुलूस नहीं देखा गया। राज्य के अतिथि का मुख हम साहित्यिक व्यक्तियों में भी भोगा। राजा साहब का भाषण ऐसा आकर्षक हुआ कि उस मुद के पर्वों में उसकी छापी चर्चा रही।

उस समय से भी पहले उसकी ललित कहानियों का एक संग्रह भाग की मावठी-प्रचारिणी-सभा से निकल चुका था। उसका नाम था 'पल्प-कुमुदावली'। उसके प्रकाशन के बाद हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं में उसकी नरम भाषा-शैली की इतनी अधिक प्रशंसा हुई कि अनेक बयोवृद्ध साहित्यकारों के उते हुए भी राजा साहब अपनी उठती बवानी में ही प्रौढिक सम्मेलन के समापति मनोनीत कर लिये गए। उक्त कहानी संग्रह के बाद उसकी 'तरंग' और 'जबरीबन' या 'धम-सहृषी' नामक पुस्तकों में भी उनके लिए ऐसी कमनीय कीर्ति, अतिथि की कि हिन्दी जगत् के पुरस्कर विडानों तथा आलोचकों का ध्यान भी उनकी ओर

श्री राजा राविकारयमजी

साहस्य हुआ। फलस्वरूप बहु काशी की नामची प्रचारिणी-मना के बापिक महोत्सव क भी सम्पन्न बनाये गए। इतना ही नहीं माचार्य रामचन्द्र मुक्क ने अपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ मे भी राजा साहब की भाषा-शक्ति की प्रशंसा की। भाषा की समता और समीपता क लिए माचार्य मुक्क की प्रशंसा प्राप्त करना वासान बात नहीं है। बहु भी राजा साहब को अनायास मुक्तम हुई।

राजा साहब संस्कृत बंगेजी उर्दू अरबी और हिन्दी के बड़े यन्त्रीर विद्वान् हैं। बंगका भाषा पर तो उनका असामान्य अधिकार है। भाषा की सम्पन्न पर गहरी नियाह रखनेवाले उनके समान साहित्य-विस्वी हिन्दी-संसार में बहुत कम हैं। जा कोई उनस मिलेगा उनकी सहृदयता चिन्ताशिली और मिन्नकारी से प्रभावित हुए बिना न रहेगा। बहु साहित्य-क्षेत्र की विविष्ट विभूति हैं। नगवान् उन्हें घटापु करें।'

आचार्य श्री नलिनविलोचन शर्मा

नलिनजी के स्वभाव की मधुरता उनकी अपनी पंतुक सम्पत्ति थी। उनके पिता महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा को मने देखा था। वह अन्तर्राष्ट्रीय स्थापित के विद्वान् थे। उनके निवासस्थान पर प्रायः सम्प्रा-समय पंडितों का जमघट होता था। प्रोफेसर बलभद्र मिश्र और पंडित रामबहिन मिश्र तथा पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा के साथ मैं अनेक बार उक्त दरबार में गया था। वहाँ मैं हृद्यक-मान था। वहाँ वो सास्त्रीय और साहित्यिक चर्चा होती थी उसका बीज योता भी मैं था। सुपभाप देखने-सुनने के सिवा मेरी वहाँ पठि ही कहीं थी। शर्माजी की मधुर प्रवृत्ति पंडितों को आकृष्ट किए रखती थी। अपनी गम्भीरता में अपनी विद्वत्ता छिपाये हुए वह पंडितों की बातें सुनते रहते थे। कभी-कभी बीच में कहीं छेड़ते और उकसाते भी थे। उनकी मधुर भाषी पंडितों को उत्कण्ठ और विस्मित कर देती थी। वह छाही दरबार का हृद्य मान भी योशों में झलक जाता है। उम समय तक मैं साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश पा चुका था। अतः अब कभी मैंने वह विद्वत्सभा देखी यमो यही अनुभव हुआ कि शर्माजी विरहविस्मात विद्वान् होने पर भी अपने मधुर व्यवहार से सभी समागत विद्वानों को सम्पुष्ट ही करता चाहते हैं किसी पर अपने वादित्य की धारक जमाना नहीं चाहते। यही विरोधता नलिनजी में भी थी। मन-ही-मन पिता-गुरु के स्मृतिस्व का सम्पदन-मनन करके यह बात निरप-र्या है निजी अनुभवों के ही आधार पर। मेरा तो यहाँ तक अनुमान है कि नलिनजी अपने पिता से भी अधिक मधुर और गम्भीर थे। उनके और उनके पिता के इस गुण में अन्तर भी था। उनके पिता के मधुर स्वभाव से कोई अनुचित काम नहीं उद्भूत सकता था। किन्तु उनके अपने

स्वभाव में जो मिठास थी उससे लोग सुपमता के साथ अमुचित लाभ उठाने लगे थे। उनकी प्रकृतिगत मधुरता दूसरों के लिए लाभदायिनी थी पर उनके अपने हित में उससे बाधा पहुँचती थी। उनकी गम्भीरता भी ऐसे प्रसंगों को पचाने के लिए अभाव थी। यदि कभी उनसे कहा भी जाता कि ऐसा मधुर न बनिए जिससे मिट्टी के बेवला की तरह लोग तिरस्कृत में ही प्रायण कर दें तो हँसकर रह जाते थे। फिर स्वभाव क्यों-का-र्यों।

नमिनजी के पास कॉलेजों के प्राचार्य और अध्यापक भी अपनी 'बीसिस' के विषय में सलाह लेने आया करते थे। स्नातक तो होते ही वे साहित्यिक शोध में निर्वच लेने सुदूरदर्शी लोग पर लिखकर भी पुस्तकें लिखते थे। आगस्तुक सञ्जन अपना प्रयोजन सिद्ध करने की धुन में यह बात भूल जाते थे कि नमिनजी के समय का भी कुछ सूक्ष्म है। रात हो या दिन आने का समय हो गया या सोने का पीला नीला कपियाँ बाँधने में देर हो रही हो कहीं बाहर आने के लिए तैयार होने की उतावली हो वह न किसी की उपेक्षा कर सकते थे और न किसी को हताश। और-नमनीर भाव से यथोचित सुझाव देते चले जाते थे। बीसिसों की अपेक्षा में संशोधन-परिचर्चा-परिचर्चा करते भी उन्हें देखा है। उसे आपाद-मल्लक रँग आकृत्ये थे। अपने परमावश्यक कार्य का ध्यान रखते हुए भी बचा नहीं टाकते थे। उकताते या झुंझलाते नहीं थे। जो महाशय जाते थे वे उनकी मधुरता से मुक्त होकर जाते थे। अस्वस्थता की रसा में भी वह मधुरता का बाना अपना बानक बनाये रहा।

साहित्य-सेवा में उनकी परांपकार-वृत्ति का लोका-जोला आँकना बड़ा कठिन है। इसी के कारण दिन भर और रात में काँधी देर तक उन्हें कार्य-व्यस्त रहना पड़ता था। मठ लिखने-पढ़ने का अधिकतर काम रात में आकर ही करते थे। सोने का समय पढ़ने में बिताने से मुझ देर तक सोना अनिवार्य हो जाता था। इधर कुछ दिनों से उनको अस्वस्थ रहते देखकर मैंने कई बार उनसे कहा कि रात में आकर पढ़ने और सुबह में सोने का क्रम बदलिए। किन्तु वह अपनी विचरताएँ बतलाने लगे तो यह कहते न बना कि अपना कार्य-आर इच्छा करने के लिए कुछ कामों

को बसवीकृत कर दीजिए या मित्रों में बाँट दीजिए क्योंकि यह एवं
 अमीकृत कार्यों को अपनी प्रतिष्ठा और नाराजा के अनुकूल ही मान
 करना चाहते थे। उनके पास विविध भाषि के बड़े महत्त्वपूर्ण साहित्य
 काम बाँटे थे और सबको बहु स्वयं ही पूरा करते थे। कुछ कोर्य
 उनकी तरह सोच सकता था और न बिचल सकता था। उनकी किन्त
 बारा और विचारबाध तथा छेदन-शीली में उनकी निजी मौलिकता ही
 ही सत्ता व्याप्त थी। अपने अमर मस्त कार्य की पुष्टि में वह सदा अपनी
 ही सुश-भूम का सहारा लेते रहे। इस प्रकार उन्हें निरन्तर परिश्रम करने
 में तत्पर रहना पड़ता था। 'साहित्य' के विविध-विषयक लेख प्रायः सोच
 समीक्षा-प्राप्त ही होते थे और उनके संशोधन-सम्पादन में तथा समा-
 लोचनार्थ प्राप्त पुस्तकों को मनोसोपपूर्वक पढ़कर उनकी बालोचना सिद्ध
 में वह अपने मस्तिष्क पर बहुत अधिक बल देते थे। साधारण काम क
 भी जैसे-जैसे लिपटाकर पिट्ट झुझाता वह नहीं जानते थे। इतिहास उन्हें
 बटना तो पड़ता ही था अपना भी पड़ता था। अपने उच्चरवाचित्य के
 विवाह में सदा सावधान रहने की जो प्रवृत्ति उनमें थी उसके कारण
 साहित्य-सेवा के छोटे-बड़े नागाविष कार्यों में उन्होंने अपने-आपको कुछ
 जपाया। अपने किये हुए काम में किसी प्रकार की कोटाही करना या
 कुछ भी कबर रहने देना उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं था। काम के
 पूरा होने में कुछ समय मले ही लग जाए, उसे अपने सन्तोष के अनुसार
 बरणी तरह पूरा करके ही रीन पाते थे।
 में समाचार व्याप्त क्यों तक उनके साथ 'साहित्य' का सम्पादन
 रहा। वह मुझसे पञ्चीव वर्ष छोटे थे वह भी मैंने उनके बहुत-कुछ सी पर
 उनके पिता की विद्वत्ता तो भारत-प्रसिद्ध थी बितके वैजस्वी कुली में भी
 उर्बर मस्तिष्क में इकर कई साल से अक्षुण्ण और कमप पूरे मह बरत
 होने लगे थे। पुणित और फलित होने का समय था ही यही तक अनु
 भाषाय जानकीवल्लभ शास्त्री के उद्गायनद्वारा 'हा हन्त हु' गम्भीर नेह का
 उग्रह्वार'। 'साहित्य' में अपने बाधे निबन्धों की पाण्डुलिपि करते समय वह अपनी
 कठौटी का उपयोग बड़ी दृढ़ता / उनके पिता का
 से करते थे। निबन्ध नहानी कविता उपन्यास आर

सम्बन्ध में उनके अपने निश्चित सिद्धांत के बिना कभी प्रसंगबद्ध सुनने पर उनकी मत्तनधीरता का परिचय मिलता था। ऐसे ही प्रसंगों के छिड़ने पर उनके विचारों को सुनने से जालझूट होती थी। प्राण्य और पारंपार्य का महान तुलनात्मक अध्ययन उन्होंने बड़ी सूक्ष्मदक्षिता से किया था इसलिए उनके विचार बड़े ठोस होते थे। समीक्षा के क्षेत्र में तो सयस्य द्वितीय-संसार में उनका एक स्वतन्त्र स्थान बनता जा रहा था। उपमाओं की नाड़ी-परीक्षा में वह ऐसे परिपक्व अनुभवों को दए थे कि कोई नया प्रसिद्ध उपमास पढ़ लेने के बाद उनसे उसकी चर्चा बचाने पर उनके तत्सम्बन्धी विचार सुनकर दृष्टिकोण ही बदल जाता था उसका बाँहर भी कुछ जाता था और उसकी वास्तविकता भी प्रकट हो जाती थी। इस तरह उनके सुविनियत विचार एक नई दृष्टि देते और अपने आलोचकों से अपेक्षा भी करते थे। अपनी सक्षिप्त समालोचना में भी वह एक-दो पंक्तियों में ही ऐसे पते की बाठ कड़ बाते थे कि उससे आलोच्य पुष्पक की लक्ष्य पक्ष में जा जाती थी। कभी-कभी तो उनका केवल एक ही शब्द ऐसी मार्ग की बाठ ध्वनित कर देता था कि उनकी सूझ की बाँटकी पर विस्मय होता था। वह कितने ही ऐसे विपुलाचंबोदक नये शब्द पढ़कर प्रयोजन करते थे जो हिन्दी के प्रकाशित साहित्य में कहीं दृष्टिक्रम नहीं होते थे। उनकी रचनाओं में ऐसे सुदूरसन्धानी ध्वन्यात्मक शब्द देखे जा सकते हैं।

कुछ ही महीने पहले मैंने एक पत्र लिखकर उन्हें लिखा जिसमें उनसे नेवेदन किया था कि अस्वस्थता और नेत्र-शक्ति की क्षीयता के कारण अब मैं 'साहित्य' का सम्पादन नहीं रहना चाहता इसलिए म्मारह्वें नये शब्द से 'साहित्य' पर मध्य नाम न छापा जाए। यद्यपि मेरी आज्ञा और इच्छा की वला देखकर कई शब्द पहले से ही वह मुझसे सम्पादन-सम्बन्धी कोई काम नहीं लेते थे तथापि मुझे यह बहुत अच्छा था कि उन्हें बनेके ही शायद भार कट्टम कट्टा पड़ता है, जिसका हानिकारक प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। किन्तु मेरा पत्र पढ़कर उन्होंने मधुर-मधुर हँसते हुए कहा— 'आप तो अभी सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिख ही बैठे हैं, जब एक भी शब्द न लिख सकेंगे तब भी नाम छपता रहेगा।' मैं उनके

बन्दुख की बढ़ाई कहीं तक नहीं । बीसा मुहुर अब दुर्लभ है । बीसा स्मिठ पूर्वामितापी और मधुरतापी व्यक्ति अब नहीं । बीसा मित्र-वत्सल और विष्ट पुण्य साहित्यिक समाज को नश्य करने क्या फिर जायेगा ?

संयोग की वजह एक दिन बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अनुधीन-कक्ष में हम दोनों बैठे थे । उन्होंने छाहसा कहा कि 'साहित्य' के सम्पादकीय स्तम्भ में स्वर्गीय साहित्य-सेवियों पर लिखी आपकी संस्मरणात्मक टिप्पणियाँ मुझे बहुत पसन्द हैं । मैंने कहा कि आपकी पसन्द ही जगदी सार्थकता है किन्तु मेरे निबन्ध पर आपको भी वैसी ही टिप्पणी लिखनी पड़ेगी । छुट्टे ही बोल उठ कि कहीं आपको ही मेरे लिए लिखना पड़ गया तो आपकी बन्धुत्व लेखनी मुझसे बाकी भार ले जाएगी । इस पर उस दिन तो हम दोनों के अट्टहास से कक्ष मुकरित हो गया परन्तु आज उस बात की स्मृति का कृत्रिम-बंजन हृदय को बढ़ा ही व्यथित कर रहा है । क्या मनुष्य के अनु-कल्प में व्याप्त ब्रह्म बन्धुत्व बाकी भी किया करता है ?

१. मूल शीर्षक : 'मधुरता की बंदुख मुर्ति' ।

प्रकाशन : जनवर-सितम्बर, १९९१—कासिका 'नर नाथ' (बलिन-सृष्टि बंधु), परमा ।

डॉक्टर दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी

डॉक्टर दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी बड़े ही माया के मर्मज्ञ और बड़े ही साहित्य के विशेषज्ञ तो वे ही। यहूतमाया हिन्दी के भी प्रतिभा-सम्पन्न कवि कथाकार, निबन्धकार और माओवादी थे। नवयुग का सुप्रसिद्ध उनकी कविता किरणों से उद्भासित हुआ। कथा-साहित्य का प्रवाह-क्षेत्र उनकी कहानियों की मनोबैज्ञानिक धारा से जागृत हुआ। उनके निबन्धों और उनकी माओवादीयों में प्राथम्य और पारंपार्य साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की पहचान मिली। उनकी माया में यहन अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति का कौशल परे-परे दिखाई पड़ा। उनके विचारों पर उनकी चिन्तनशीलता की छाप स्पष्ट प्रकट होती रही। किन्तु कठिन-कठोर स्वास्थ्य रोम से आक्रान्त रहने के कारण वह अपनी बहुमुखी प्रतिभा का मनोनुकूल अनुभव न कर सके। विधि-विधान विरहण है। जो अपने पन्नीर स्वाध्याय के अन्तर्गत हिन्दी-साहित्य की समृद्धिशीली बगाले में समर्थता वह महारोग का शिकार होकर बिदल रह गया। वह केवल असाध्य रोग के ही शिकार न थे और अन्धकार के भी शिकार थे। रोग का प्रभाव तब पर था अन्धकार का मन पर। तब-तब दोनों पर अन्धकार का सम्मिश्रित प्रभाव बढ़ा। विचारवान् और सबसभार के लिए मार्मिक बल की सम्पत्ता असाध्य होती है। स्वाभिमान और स्वाधिकार पर कभी अशरणाहित रोग अनुभूतिशील व्यक्ति के हृदय में रह-रहकर कबकती है। उसकी टीस में ध्यान का विषय फिर जाने से असाध्य परिणाम होता है। 'सम्बन्धितस्य चाकीर्तिर्परचाकीर्तिरिव्यथे'। किन्तु उनकी सङ्घिष्णुता असाध्य थी। गर्मिणी पीड़ा को भी अपनी स्वामाधिक मुसकानों में छिपा लेने की कला उन्हें माध्यम थी। मने ही मुसकान के बाद उनका चेहरा विवर्ण हो

बन्धुत्व की बड़ाई कहीं तक करें ! वैसे मुहूब अब दुर्लभ है । वैसे स्मित पूर्वाभिलाषी और ममुटाभाषी व्यक्ति अब कहीं ! वैसे मित्र-वत्सल और घिट्ट पुरख साहित्यिक समाज को भ्रम्य करने क्या फिर आयेगा ?

संघोष की-बात एक दिन बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अनुशीलन-कक्ष में हम दोनों बैठे थे । उन्होंने सहसा कहा कि 'साहित्य' के सम्पादकीय स्तम्भ में स्वर्गीय साहित्य-सेविषी पर किसी आपकी संस्मरणात्मक टिप्पणियाँ मुझे बहुत पसन्द हैं । मैंने कहा कि आपकी पसन्द ही उनकी सार्थकता है । किन्तु मेरे निमत पर आपको भी बँसी ही टिप्पणी लिखनी पड़ेगी । छूटते ही बोल उठ कि कहीं आपको ही मेरे लिए किञ्चना पढ़ सया तो आपकी अम्मस्त संकामी मुझसे बाजी मार ले जाएगी । इस पर उस दिन तो हम दोनों के अट्टहास से कक्ष मुञ्चरित हो गया परन्तु आज उस बात की स्मृति का बुद्धिक-बंधन हृदय को बड़ा ही स्पष्ट कर रहा है । क्या मनुष्य के अन्त-करण में व्याप्त ब्रह्म भविष्य बाणी भी किया करता है ?'

१. मूल शीर्षक : मधुरता की संकुल धूर्ति ।

प्रकाशन : जयभार-दिसम्बर, १९६१—वास्तव 'नर बाण (व्यक्ति-स्मृति बंधन) करता ।

डॉक्टर दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी

डॉक्टर दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी बंगेड़ी भापा के मर्मज्ञ और बंगेड़ी साहित्य के विशेषज्ञ तो वे ही। यह भापा हिन्दी के भी प्रतिभा-सम्पन्न कवि कथाकार, निबन्धकार और आलोचक थे। नवयुग का सुप्रभात उनकी कविता किरणों से उद्भासित हुआ। कथा-साहित्य का प्रबाह-खेप उनकी और उनकी आलोचनाओं में प्राच्य और पारश्चात्य साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन की महारत मिली। उनकी भापा में गहन अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यञ्जना का कौशल परे-परे दिखाई पड़ा। उनके विचारों पर उनकी चिन्तमाला की छान स्पष्ट साकफती रही। किन्तु कठिन-कठोर भासा उग से आक्रान्त रहने के कारण वह अपनी बहुमुखी प्रतिभा का मनोतुल्य अनुपयोग न कर सके। विधि-विधान बिसलम है। जो अपने गम्भीर स्वाध्याय के फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य को समृद्धिदायी बनाने में समर्थ था वह महाराज का शिकार होकर बिबध रह गया। वह केवल असाध्य रोग के ही शिकार न थे और अग्याय के भी शिकार थे। रोग का प्रभाव तन पर था अग्याय का मन पर। तन-मन दोनों पर अग्याय का सम्मिश्रित यन्त्रणा बसह होती है। स्वाभिमान और समसदार के लिए मार्मिक रंश की उग अनुभूतिशील ब्यक्ति के हृदय में रह-रहकर बसकती है। उसकी टीस में अज्ञान का बिय मिल जाने से मयाबह परिणाम होता है। 'सम्मान-वितस्य चाधीतिर्मरणवदितरिष्यते'। किन्तु उनकी सहिष्णुता मयाब थी। मर्मबिबी पीड़ा को भी अपनी स्वाभाविक मुसकानों में छिपा लेने की कला उन्हें माकूम थी। मने ही मुसकान के बाद उनका बेहतर बिबर्न हो

आए, पर बातचीत के प्रसंग में उनका बिल-बर्ष लखाई नहीं पड़ता था। मालस और मस्तिष्क के मन्वम से उन्हें सत्योप का बमूत उपलब्ध हो गया था। कभी वह अपनी कसक किसी को ठाढ़ने देना नहीं चाहते थे।

उनकी वास्तविक महत्ता उनके जीवनकाल में परची न आ सकी। प्रायः महान् व्यक्तियों के प्रति ऐसी ही झूठ हुआ करती है। उनसे जो काम लिया जाना चाहिए था वह लिया न जा सका। देश और समाज ने उन्हें वैसी मुक्ति नहीं दी। किसी अप्रतिम मेधावी की मेधाशक्ति का उपयुक्त उपयोग न हो सकना देश और समाज का दुर्भाग्य है। उनकी आत्मपरिभा का यथोचित उपयोग साहित्य-निर्माण में होना आवश्यक था। मुझे जब कभी उनके उत्सर्ग का सुखबसर मिलता था मैं बराबर उनसे अंग्रेजी में हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखने का अनुरोध किया करता था। वह भी इसकी आवश्यकता का अनुभव करते रहे। किन्तु कभी तो अनिच्छित ठीक न रही और कभी परिस्थिति प्रतिवृत्त हो गई। वह सोचते ही चले गए। आचार्य मत्स्यनिलोचन शर्मा ने भी उनसे यह बात कही थी। शर्माजी का भी मत था कि कम-से-कम बिहार में एकमात्र विद्यार्थीजी ही इस काम को सफलता से पूरा कर सकते हैं। मैंने 'साहित्य' में भी यह बात लिखी थी। परन्तु ईश्वर की ऐसी इच्छा और इपा न हुई कि यह काम मधार्थ अधिकारी व्यक्ति के हाथों सम्पन्न होता। यदि कोई इसे अतिघमोक्ति न समझें तो यह निर्गुण भाव से कहा जा सकता है कि हिन्दी-संसार में जो दो-चार विद्वान् विद्वान् इस काम को अधिकारपूर्वक पूरा करने योग्य समझे जाते हैं उनमें विद्यार्थीजी का स्वाम सर्वोपरि था।

जब मैं बिहार राज्य-भाषा-परिषद् की सेवा में था आरम्भ में वह भी उसका मान्य सदस्य थे। उन्हें अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ के हिन्दी-अनुवाद का भार सौंपा गया था पर उनकी विद्वत्ता और साहित्य-सेवा की साम को अनवरत अस्वस्थता ने सपन्न न होने दिया। इसका विषाद उनके मन पर भी छाया पड़ता था। हमारे समाज में असाधारण प्रज्ञा के विद्वान् से माहात्म्यकार हाथ काम उठान की प्रवृत्ति बहुत कम दीर्घ पड़ती है। लोकप्रिय पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन और जन-सम्पर्क में रहनेवाले

पत्रकारों का भी ध्यान साहित्यिक मनीषियों की ओर विद्येय उन्मुख नहीं है, जिसका नतीजा साहित्य के हित में बड़ा हानिकारक हो रहा है। विद्यार्थीजी अपने सम्बन्ध-अवास के अनुभव सुनाते हुए कहते थे कि विदेशों के पत्रकार अपने भूर्बन्ध साहित्यकारों के नामकोप का प्रसार बनता से विच्छिन्न करने की कला खूब जानते हैं। किन्तु अब ये बातें निरर्थक और निस्तार हैं। विद्यार्थीजी की प्रतिभा के जो प्रसून हिन्दी का पाठ हो चुके हैं उन्हीं से इसका साहित्योद्योग विरकास तक सुसोमित और सुसोमित रहेगा। उनके समान आरस निवृत्तक का सौहार ही अब उनके इच्छितों के हृदय में सँभोला हुआ मूलधन है।^१

१. लेखन १५ दिसम्बर १९४०।

प्रकाशक पत्रपुस्तक १९४४—'भारती (बी० एच० कॉलेज, पटना, श्री सिन्धी बनिश)।

मेरा जीवन

मेरे जन्म पिता बहुत अच्छे रामायणी थे और प्रतिदिन रातों बेली 'राम चरितमानस' का पाठ नियमित रूप से किया करते थे। 'मानस' के श्लोक और चौपाई-बोटे कष्टरूप करके सुताने पर मुझे नित्य पैसे दिया करते। मेरे बचपन में उन्होंने यह अभ्यास कई साल तक कराया। उनकी प्रेरणा से यह अभ्यास उनके जीवन के अन्तिम दिनों (१९०९ ई०) तक चलता रहा। इसका प्रभाव मेरे समस्त जीवन पर बड़ा गहरा पड़ा। मर्यादा पुराणीतम भयवान् रामचन्द्र में ध्यानमग्न रहने और उनके आदर्शों पर सदा ध्यान देने के लिए यह प्रोत्साहन दिया करते थे। मेरे आचरण पर पिताजी की सीख का बहुत अच्छा असर हुआ। मैं समझता हूँ कि राम कृपा से ही मैं प्रवेशिका-कला सं प्रारंभी-उर्दू की पढ़ाई छोड़कर एकाएक हिन्दी पढ़ने लगा जो मेरे स्कूल या नगर (आरा) की सबसे पहली बटना थी। स्कूल में शुरू से ही प्रारंभी-उर्दू पढ़ते रहने पर भी रामायण का संसर्ग कभी न छूट्य और पिताजी के आदेशानुसार मैं नित्य 'मानस' पाठ भी करता रहा जो अब तक बराबर जारी है। साहित्य-संवा की प्रेरणा का मूल स्रोत मेरी समझ में 'मानस' ही है, जिसके कारण छात्रा बन्धा (१९१ ई०) से ही मैं पटना की साप्ताहिक पत्रिका 'सिद्धा' में लेखन शिखने लगा। मेरे स्कूल के हिन्दी शिक्षक पंडित चन्द्रहास द्विवेदी जो मेरे बिले के ही थे और संस्कृत-शिक्षक पंडित रामचरित जयस्यार जो बलिया बिले (उत्तर प्रदेश) के थे मुझे उर्दू-कला सं हिन्दी-कला में जाने तथा जानसानुपयी छात्र होने के कारण विशेष उत्सर्ग देने लगे। उक्त द्विवेदीजी न 'हिन्दी-जीव नामक एक पुस्तक लिखकर छात्राई, जिसे मैं अपनी साहित्य शिला की पहली पाठप-मुद्रक

मानता हूँ। फिर उक्त उपाध्यायजी ने मुझसे संस्कृत की प्रथमा परीक्षा दिलवाई और मुझसे संस्कृत का 'मुनापित-रत्न भांडाकार' नामक ग्रन्थ (निर्णयवाग्न प्रेस बम्बई) मगवाकर मुझे पढ़ाने तथा उसके सुबोध प्लोडों का कष्टकर कराने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि संस्कृत और हिन्दी के प्रति बहिष्कृत अनुपान मेरे मन में जाग्रत होता गया। संशोधनयुग सुपरिचित हिन्दी-साहित्य-सेवी पंडित ईश्वरीप्रसाद मर्माल मेरे स्मृत्य में हिन्दी के साहित्याध्यापक होकर जाये जिन्होंने मेरे साहित्यानुपान को पकड़कर उसे और भी अधिक बढ़ावा दिया। वह मुझे भाग्यशर की नामची प्रचारिणी-समाज में प्रतिदिन संध्या-समय अपने साथ ले जाते और पत्र-पत्रिकाएँ चुनकर पढ़ने तथा उनमें से आवश्यक बातें लिख लेने के लिए निर्देश करते थे। इस प्रकार वही मेरे साहित्यिक नुद बन गए और जब तक जीत रहे, मेरा पत्र-प्रबन्धन करते गए। अतः साहित्य-सेवा का व्यापार मेरी आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति का साधन होने के अलावा मेरी हार्दिक प्रकृति के कारण भी मेरे जीवन का चिरमयी बन गया। यद्यपि हिन्दी भित्ति-युद्ध बिना अन्न न पाने की मरी स्वामाधिक मनोवृत्ति और प्रकृति ही गई बसिक प्रकृति ही बँधी बन गई, तथापि मैं यही मानता हूँ कि केवल जीविकोपार्जन के मुख्य साधन के रूप में ही मैंने साहित्य को अपनाया। योगक्षेम की कामना के साथ-साथ वह अल्पकालीन प्रकृति भी इस काम में निरन्तर उत्साह देती रही है।

साहित्य-समारम्भ के कार्य में प्रवृत्त कराने वाले समय का सूत्रपात उसी समय हो चुका था जब मैं शरसी उर्दू पढ़ने वाला छात्र था। उस संशोधन का भीमभेद तो तब हुआ जब मैं स्कूल में दाखिल होने से पहले उर्दू के मकसद से पढ़ता था। मेरे बड़े बहनोई मुंठी काविकाप्रसादजी हिन्दी के प्राचीन भक्ति-साहित्य और रीति-साहित्य के बड़े यथार्थ ज्ञाता थे। पत्रपत्र की पढ़ाई-लिखाई के अतिरिक्त जो सबकाय का समय मिलता था उसमें वह मुझसे माधुराधर लिखवाते थे। मेरे अक्षर सुधीन होते थे इसलिए कम्पनी-नरेश के विद्याल 'महामार्य' के रोचक प्रबंधों की प्रतिक्रिया वह मुझसे ही करता था। वे हस्तलेख अद्यावधि मेरे संग्रहालय में हैं। उन्होंने स्वयं भी महामार्यान्वर्त 'अपवर्षीता' की पूरी प्रतिक्रिया

सैयार की भी फिर अयोध्या-नरेश के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रसकुसुमाकर' की भी प्रतिक्रिया-कर डाली थी। इन दोनों चर्यों की महत्त्व करत समय में बालपन के कृतुहृत्कषय जनसे विविध भाति क प्रबन करता जाता था और नह बड़े सरस डंभ से प्रसंग समझाते थे। इस रीति से भी उर्दू के पाठ्यमाला-काल से ही साहित्यिक दिशा में प्रवृत्ति बढ़ती गई। फिर स्कूल में पढ़ते समय जब मेरी पहली छात्री हुई (१९०७ ई०) तब चेठ में ब्याह होने क बाद माइबास में ही मेरी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। अद्यपि विधायमन नहीं हुआ था तथापि पत्नी से मेरा सामान्य परिचय करा दिया गया था। वह पढ़ी-लिखी थी इसलिए दो महीने तक बिट्टी-पत्नी भी होती रही। किन्तु उनके अचानक मरने से बिल पर ऐसी खोट पहुँची कि मैंने उसके सभी संछिन्न प्रेम-पत्रों को जका डाला और जब प्रेम-पत्रों का विधोम भी चलने लगा तब उस देवी की दिवंगता बाल्या को अस्व करके सुन्दर-मे-मुन्दर सम्बोधनों के साथ प्रेम-पत्र लिख-लिखकर अपने ब्याकुल हृदय के उद्गार बाहर निकालने लगा। यह बस एक वर्ष तक चला। बाद है कि अज्ञानजन्म मोहकष जन अछिन्न प्रेम-पत्रों को भी नष्ट कर दिया। किन्तु उन्हीं प्रेम-पत्रों से लिखने की कत कत गई। यह एक ऐसा अद्भुत खेल है जिसकी बधा भी नहीं है।

भारत में जो छोटे-मोटे कल खेले थे वो जैसे ही कतु निबन्ध के जसे स्कूली छात्रों से कक्षाओं में लिखवाए जाते हैं वर जब कहानियाँ लिखने का लोक हुआ तब पहले प्रेम की दुनिया में प्रवेश हुआ। पर मेरे उपर्युक्त साहित्यिक बुध समझी थे उन सभी कहानियों को अस्वीकृत ही नहीं किया उनका अस्तित्व भी नष्ट करा दिया। उनके निर्दोषानुसार मैं लोक-समाज में ही कथावस्तु जोड़ने की जोर उन्मुक्त हो गया। मेरी शुरू दम्पह मौलिक कहानियाँ हैं जिनमें ऐतिहासिक साथ वर जो भावित है उन्हें छोड़ सभी कहानियाँ जाँगी-बेबी बाना-मुनी तथा घटनाओं पर ही अवलम्बित हैं। अल्पतः साधारण ग्रामीण व्यक्ति मेरे सम्पर्क में आव और उनक द्वारा मुझ कृत कृताणों से कहानी लिखने की प्रेरणा मिल गई। ऐसी प्रेरणा व्यक्तिगत अथवा निजी अनुभवों से भी मिली। मेरे गाँव का एक बामूनी किसान जिनका नाम 'अवेतर' था और जो

बड़ा निष्ठावान सिव मन्त्र का प्रायः ईश्वर मन्त्रों की कपाई सुनना करता था। छद्मरूप में उससे सुनी हुई सब्धी पटना पर मेरी 'हृदयगतजी' नामक कड़ानी लिखी गई।

जीवन में संघर्ष क बरबर तो बराबर बने रहे। क्रिजोरबस्था में ही बमिनाबकों की कथछाया सिर से हट गई, पाँच के पर की खेतीबापी नी बाकानकृति-मुस्य हो गई, बीबिका की आबारयिता केवल सोपनी ही रह गई। हिन्दी के लेखकों और श्रमजनों में जसा सम्बन्ध रहा थाया है जय-बाहिर है। 'अग्नी पीसे कुषा लाय' कहावन मुक्त पर सटीक बँठती है। किन्तु समबद्धता से आनाबद्ध रहते हुए भी सम्बोध का पत्ता कभी न छूटा। मेरी रचनाओं में कोई ऐसी विशेषता भी न होती कि मैं पुरस्कार बरबा पारिधमिद के निमित्त कभी जाया जयवा आबद्ध करूँ। अपनी रचना को प्रकाशित और लोकलोकन क समस उपस्थित देखकर ही आनन्द-अनुभूत रहा और दिन-रात की भ्रमणीकता से जो कुछ विरामपर विन्वाते हैं उससे उन-मन को मुक्त प्राप्त होता जसा था रहा है। यदि प्रकाशक-बन्धु मेरे प्रति बोड़ी भी सहलुनूति दिखते या सपर्य को प्रकृष्टा कुछ कम हो जाती। किन्तु जयनी परम्परा प्राप्त स्वाभाविक आम्तिकता के कारण मैं यही समसकर संघर्ष जँकता था रहा हूँ कि मैं प्रकाशकों का पुराहित क्कन चुका रहा हूँ और बचालाभ-सम्बोध ही मनु का आरथ है। हिन्दी स ऐसी समन ही जय गई कि संघर्ष से मैं कभी कतरावा नहीं और इसके लिए कभी किसी के साथ मन मैला न किया। पोर जर्ब-संका में भी शीक का कभी तिरस्कार करने का ब्रुसाहस न किया। ईश्वर ने इसका बड़ी पुरस्कार दिया कि संकट आया भी ता नाम की तरह ऊपर-ही-ऊपर निकल गया। ईश्वर-भार्यता का सहारा अनुज को कभी बीन जयवा बरमुलनेयी नहीं होने देता। और संघर्ष तो जीवन-जन्म का सौरज ईशाने बाबा है, उसके बिना जीवन नबबा निरीक्य हो जाता है। मैंने संघर्ष को सदा भयबद्प्रसाद ही समसा है। जीवन के संघर्षों का विवरण देना ता कटुता फैलानेवाला राम-श्रेय का गृहान बड़ा करता है। तह विवरण तो मेरी वनन्विनी क पन्नों में ही कुछ रहने योग्य है। मुझे तो जयन जयम्य हिन्दी-प्रेम के लिए कठिनाइयों

से जुसते रहने की शक्ति ही परमात्मा से जीवने में मुक्त मिलता है। जब उसकी मर्जी के विचारक एक पत्ता तक नहीं हिलता तब संघर्ष को भी उठी की देन समझने में हाथि ही क्या है। परमहंस श्री रामकृष्ण की यह अमरवाणी हमी सत्य का उत्पादन करती है—“जो हाथि हो सो प्रभु की इच्छा और जो काम हो सो प्रभु की कृपा। इस अमोघ सत्यवाणी का ध्यान बना रहे तो जीवन-संघाम में उस लोकोक्ति का अमलकार स्पष्ट दीप्त पड़ता है—“भारत में भरबूक का बड़ा घंटा टूटि पर्यो। किन्तु संपर्पणीक जीवन में इस दार्शनिक भावना को अरिठार्थ करने के लिये भी कठोरतम मानसिक संघर्ष करना पड़ता है और उसके लिए भयबद्धता की अरिठत अनुमति से ही शमता प्राप्त होती है।

जीवन में आए-या संकटों और क्लेशों का छेला-जाला संकल्पित करना बड़ा कठिन काम है, परन्तु जो मुख्य प्रसंगा के संश्लिष्ट उत्प्रेण से मेरी उपर्युक्त बातों की पुष्टि होती हीन पड़ेगी। काशी प्रवास के समय (१९२७ ई०) जैसी छत से गिरने का कारण मेरा दाहिना पैर टूट गया। पैसे पाठ नहीं थे। संक-सहायक का भी अभाव था। किन्तु ईश्वरेच्छानुसार इष्टमित्रों और शुभचिन्तकों ने अप्रत्याक्षित रूप में सब अभावों की पूर्ति कर दी। समय में न आ सका कि महीनों तक संकटों का लक्ष कैसे निभा और किसने निभाया। उस महसूस सत्ता के सिवा किसी और का यह लेल नहीं था। दूरीय बार जब मैं बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् (परमा) का संभालक था यवमा से आश्रय हो गया (१९५१-५२ ई०)। यवमा-केन्द्र बिहारशासन में महीनों दीवायस्त रहा। मेरे दोनों पुत्र कॉलेज के छात्र थे। आम्नी का कोई खरिया नहीं। नई खर बायी नीकरी का निवमानुसार कबल इत मास का बैनिक अककारण मिला। परिवार की अमहायावस्था की चिन्ता अलग सत्ताने लयी। किन्तु निपति का बनि बापलों में न ईश्वर की कृपा की मुनहसी किरमें अनायास पूट परी। उस समय हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार भी जगदीशचन्द्र नाथूर, आई० सी० एस बिहार सरकार के निष्ठा-सचिव और आचार्य बरपीनाथ वर्मा निष्ठा-मंत्री थे। इन दोनों महानुभावों को धनधान्य में मेरी सहायता की प्रार्था दी। बतते-बैतते उक्त परिषद् से मेरी

सभी छोटी-बड़ी रचनाओं के प्रकाशन की व्यवस्था हो गई। बिहार सरकार ने इन काम के लिए पैठीस ह्वार रुपये परिपत्र को दिये और समस्त रचनाओं की अनुमित पुस्तक-संख्या के आधार पर मुझे सम्पादन (रैंपस्टी) भी पेशनी मिल गया। सरकारी संपादिक ब्यूरो को भेजकर यह सुविधा बनायास निकल आई। फिर प्रामाणिकी राम की सुराई में से यह प्रसाई भी निकली कि मेरी अधिकांश रचनाएँ उक्त परिपत्र से चार बड़े खण्डों में प्रकाशित हो गईं जिसका कामोस प्रतिवर्ष मिल रहा है। इस प्रकार विपत्ति में सम्पत्ति का आयमन सहसा समयवद्दुपा का ही जानास बेठा है।

मुझे सबसे अधिक सन्तोष जीवनभर में दो ही कामों से मिला। एक तो मेरे चिर-संचित पुस्तक-संग्रह की सुरक्षा के योग्य पक्का मकान बन गया और बिहार के साहित्यिक इतिहास के प्रकाशन की निश्चित व्यवस्था उक्त परिपत्र में हो गई। पुस्तकालय बनवाने के लिए पैसे मेरे पास न थे और बाधा भी न थी कि पक्का मकान कमी बन सकेया। अचानक सरकारी आदेश मिला कि अहिन्दी-भाषी सरकारी मजदूरों की हिन्दी-शिक्षा के लिए एक पाठ्य-पुस्तक बनाओ। मैंने प्रयत्न किया। वह सफल भी हुआ। एकमुठ ही ह्वार रुपये मिल गए और बाँक के घर पर पुस्तकालय बनवा डाला। वह १९२९ ई० में श्रीरामलक्ष्मी को मिताधी के नाम पर स्थापित हुआ था और आज उधमें पुस्तकों तथा पत्रिकाओं की संख्या लगभग बीस हजार है। बिहार के साहित्यिक इतिहास के लिए धामनी-संग्रह का काम १९१८ ई० में ही शुरू कर दिया था और धनुहीत सामग्री की रक्षा के निमित्त भी चिन्तित रहना पड़ता था। किन्तु जब मैं उक्त परिपत्र की सेवा में आया तब अधिकारी-वर्ग से साहित्यिक इतिहास के प्रकाशनार्थ निवेदन किया और उपर्युक्त मान्युर नाह्व ने यथोचित प्रबन्ध कर दिया जिसके फलस्वरूप वह काम नियमित रूप से चल रहा है। यद्यपि मैं परिपत्र से अलग-अलग करके सितम्बर, १९३६ में ही कार्यमुक्त हो गया तथापि अधिकारियों की इच्छा के अनुसार वह काम अब भी मेरी ही देख रेख में हो रहा है। इससे मुझे इतना अधिक सन्तोष है कि इस साहित्यिक काम की पूर्णवृत्ति देखने के

मित्रा अब और कोई कामना नहीं है। सब मानिए तो अब अधिक कुछ करने की क्षमता ही नहीं है।

भार्य क उठार उड़ाव और पहूरी-से-गहूँ उदासी में भी मुझे एक-मात्र ईश्वर प्रार्थना से ही धान्ति मिली है। जीवनमर क अनुभवों का सार इतना ही है। हाँ सद्बन्धों का स्वाभाव भी उद्दिष्ट मन को प्राप्त करने का एक उत्तम साधन अनुभूत हुआ है। आध्यात्मिक बचवा दार्ष्टिक विचारों और सन्त-समायम तथा साहित्यिक कार्य-सम्पादन से भी महा-कदा उदासी मिटी है। परन्तु ईश्वर-प्रार्थना के समान उसका स्वाधी प्रभाव नहीं बीज पड़ा है। भार्य-जन्म उत्पान-रतन में और प्रधात बने रहने का कोई दूसरा अक्षर उपाय अब तक के जीवन में नहीं सुझ पड़ा है जो ईश्वर की शक्ति और प्रार्थना के समान अमोघ हो। ऐसा अनुमान होता रहता है कि मनुष्य स्वर्ग ही अपने दिव्या बहूकार के बनीभूत हो मुख-धान्तिमय जीवन-यापन क सुनम मार्ग—ईश्वर-प्रार्थना-व्य—से भटक गया है। भीमवनामधत गीता में जो घादवत धान्ति का आदवातन देने वाले भगवद्वाक्य हैं वे जीवन-यात्रा को निबिन्ध सम्पन्न करने के लिए अत्युत्तम सम्बल हैं। किन्तु धठा और बिस्वास की छर्त पूरी किये बिना वह सम्बल सुनम नहीं। मेरा अटक बिस्वास है कि भौतिक उन्नति के उत्तमोत्तम साधनों से भी मानव-जाति सन्धा सुध नहीं पा सकती। अन्त में इस वैज्ञानिक युग को भी अध्यात्म की कुनीती के सामने नतमस्तक होना पड़ेगा। तथास्तु।^१

१. रूप शीर्षक : 'अब तो बस एक ही कामना है'।

लेखक : २४ जनवरी १९९१।

मध्यस्थ : अमरुती १९९१—मासिक 'नवजीन' बम्बई।

एक निजी सस्मरण

समय संसार के सभी प्रयत्नों और उद्योगों का लक्ष्य मुक्त प्राण्य करना है। मुक्त की चाह और लोभ में सभी प्राणी दिन-रात व्यस्त रहते हैं। मनुष्य अपनी मनोवृत्ति प्रकृति और प्रकृति के अनुसार ही मुक्त का अनुभव करता है। प्रतिदिन के जीवन में मुक्त के अनुभव के लक्ष्य प्रायः आते-आते रहते हैं। किन्तु ज्ञानन्द के ज्ञान साधारण जन को प्रतिदिन नहीं मुक्त करते। वे केवल भ्रमवद्भ्रमण का, स्वयं के लक्ष्य अपासक को एकाग्र मन के ध्यानी को निस्पृह ज्ञानप्रविष्टक का और योगी को ही उपलब्ध होते हैं।

मुक्त और ज्ञानन्द से महान् अन्तर है। गमनी-विषाखी केवल सुन्दरी समामन को महानन्द-सहोदर मानता है। किन्तु इहानन्द का कोई सहोदर है ही नहीं—दोषा ही नहीं—दुःखा भी नहीं। जीवन-विधासी केवल दिग्गम्य बाह्य में ही अपने ज्ञानन्द की पूर्णता समझता है। परन्तु इन्द्रियों को सम्पुष्ट करलैबाले बोलों से ज्ञानन्द करी उपलब्ध नहीं होता। इन्द्रियों के विषयों के उपभोग से मुक्त अवश्य प्राप्त होता है, जो जनि चार्पत जनसंपन्न होता है। ज्ञानन्द यदि लक्ष्य प्राप्त हो जाता है तो सब लोभ-राम में गमा रहता है। वह सभी जीव नहीं होता। उसकी मात्रा निरन्तर बढ़ती ही रहती है। वह सत्त्व ज्ञानन्द एकमात्र योगी का मूलभूत है।

योगी केवल जल-सहाय में ही नहीं रहता। वह सार्वत्रिक प्रयत्नों के जीवन पृथ्वी में भी रहता है। सर्वगृह्य योगी ज्ञान के विह्वल समाज में भी कहीं दौल जाते हैं। वे कहते हैं कि कुल की छाया का ही नाम मुक्त है। वे ही कहते हैं कि परमात्मा क साय जीवात्मा का संयोग ही

'योग' कहलाता है और यही पारमार्थिक ज्ञान का मुख्य स्रोत है। इसी ज्ञान से मानवात्मा परिपूर्ण होती है। किसी प्रकार के सांसारिक सुख से मानव की आत्मा परिपूर्ण नहीं होती। पर सांसारिक ज्ञान से आत्मा की पूर्णता होती है। ऐसी पूर्ण आत्मा भगवद्भक्ति में ही सम्पन्न हो सकती है।

मेरा भी व्यक्तिगत अनुभव ऐसा ही है। सर्वप्रथम और स्वाभाविक तौर पर ही इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। किन्तु अर्हन्विय अनुभूति को आधिकारिक क्रिय करनेवाले ज्ञान से ही अभी तक संबंधित ही हूँ। जीवन में अपने किसी विशेष कार्य से उस ज्ञान का आभास मात्र-त्रा मिला है। पर तन-मन में तत्त्व ज्ञान प्राप्त करनेवाला ज्ञान अभी तक नहीं हुआ है। अपनी विशेष मन-स्थिति में परम तृप्ति की अनुभूति भी क्षणिक ही हुई है क्योंकि परम तृप्ति का हम रोमाञ्चमी में अब तक नहीं छरछटाता। अब तक वह अयोग ज्ञान नहीं बरसाता। तन-मन-प्राण को पुनरुत्थित और विह्वल बनाए रखनेवाले ज्ञान का जो उत्सवमय है, उसके पास तक पहुँचने का सीमाप्य मुझे अभी प्राप्त नहीं हुआ है।

जैसे ही मेरे उत्सवमय उत्सवमयी विरा मुझे बचपन से ही भयवश्याय स्मरण की महिमा बतलाते और उसका ज्ञान सिखाते रहे। पर जीवन का विप्लव क्षण में उस ज्ञान को साक्षात् का रूप नहीं देने दिया। अब भी जिस विशेष कार्य से मैं ज्ञान की छाया पूजा रहा हूँ वह साहित्य समाजमन का अधिष्ठित और कुछ नहीं है। मेरी चारणा है कि मेरी अनुभूति में अभी वह उत्सव-मय तक पहुँचने की पहली पैठवामी अयोग बामता भरी आई है जो ज्ञान के मूल उत्सव तक अनायास ले जाती है। फिर भी जिस विशेष मन-स्थिति में परम तृप्ति के अनुभव की शक्त मिलती है वह तुलसीदास 'राजवल्लभ' और 'विनयपत्रिका' की कथाएँ मात्रा में उल्लेखनीयता का ही परिचाय है।

साहित्य-सेवा और साहित्यानुशीलन में जो मुग मिलता है, उस मुग का ज्ञान की लजा देने में हिचक इसलिए होती है कि परमात्मा के समस्त आत्म-सम्पन्न करते समय जो आत्मन्तरिक आह्लाद होता है, उसकी सम-वशता में वह मुग टिक नहीं पाता। अपर्युक्त 'मानस' और 'विनयपत्रिका'

एक निजी सत्कार

का स्वाभ्याय भी प्रकाशम्बर से साहित्यानुशीलन ही कहा जा सकता है। मनोमोह के साथ श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ्य भी एक प्रकार का साहित्यानुशीलन ही है। पर इस साहित्यानुशीलन की विशेषता यह है कि इसमें मस्तिष्क और बुद्धि से अधिक एकाग्र चित्त-वृत्ति तथा अन्तःसूत्र की अनुभूति का ही योगदान रहता है। ऐसा स्वाभाविक योगदान केवल भाष्यात्मिक साहित्य में तमय होने पर ही मिलता है।

निरुचय ही मेरा मन उस अद्विष्ट मानन्द की झाँकी मात्र देखने के लिए भी आकर्षित रहता है किन्तु अपनी विषम परिस्थितियों से विरक्त रहने के कारण बँसी साधना में उत्तर नहीं हो पाता जैसी साधना से उस प्रकाशमय मानन्द की किरण-रेखा इन झोंकों में अमृताब्जन साँजन के लिए स्वर्ण-दासाका बन सकती है। इतने पर भी मेरा निजी अनुभव है कि साहित्य-साधना में मन के केन्द्रीकरण का जो अभ्यास बँबू बाता महायज्ञ ही सिद्ध होता है। साहित्यकार तो 'मानस' या 'विमलपत्रिका' या 'गीता' का पाठ करते समय अपनी मातृकृता को शक्ति-भावना में निमग्न रखता है और अपनी सहृदयता को माया-भाव-मग्न काष्ठात्मक सौम्य में। इस तरह उसको बोहोप या बबल जानन्द मिलता रहता है।

असाहित्यिक मग्न भी 'मानस' या 'विमलपत्रिका' में उतना जानन्द नहीं पा सकता जितना साहित्यिक मग्न पाता है। मैं मग्न होने का दावा नहीं पा भयवद्भक्ति ही है। जब मन-स्थिति उसमें अचल हो जाती है, तब यही जादोसा होती है कि यह क्षण यदि अमल हो जाता तो मनोरथ-रथ अपने लक्ष्य की ओर बबल पति से अग्रसर होता रहता या उस तक पहुँच ही जाता। किन्तु माया प्रपंच ऐसा होने नहीं देता। इसी विषयता के कारण मन को इतना ही संतोष रहता है कि साहित्यापठन से जितना मानन्द अनुभूत हो जाता है और शक्ति-साधना से जितनी वृत्ति मिल जाती है, उतने से ही जीवन की सार्वक्या मान लेना चाहिए। इस प्रकार मुझे साहित्यिक कार्य में संतान और परमात्म-चिन्तन में अनुरक्त होने

तत्त्व', 'आर्य-सुरातत्त्व' 'उपनिषद्' 'अपराधिता' (उपनिषत्) सिद्धमाय कृतुमोक्षलि' (स्वरचित संस्कृत स्तोत्रों का संग्रह) 'छात्रकेन्दुर यद्योगानम्' 'बोध-प्रकाश' 'अनेक-किशोर' (कीर्तनी) 'बीरबाल निबन्धमाळा' 'पेडकर साहू की जीवनी' 'निम्न शिक्षक समुदाय' 'मात्मरूपा' (साहित्य, पटना के दो बंकों में क्रमशः प्रकाशित) । पारितोषिक-प्राप्त प्रबन्ध 'हिन्दी-साहित्य की पटना काहिले' ।

विशेष : आर्य गणनी प्रचारिणी-समाज के संस्थापक एवं भारी (१९०१ ई०) । कलकत्ता विश्वविद्यालय के संस्कृत कॉलेज में व्याख्याता प्राध्यापक (१९१४-१५ ई०) । हिन्दी प्रचारक, तथा कथ्य विकास प्रेस (पटना) के संस्थापक बाबू रामदीनसिंह द्वारा प्रकाशित 'विद्या' का २०-२५ वर्षों तक सम्पादन । बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन (अप्रैल १९२२ ई०) के सत्रापति । १९३२ ई० में सरकार द्वारा 'महा महीपाम्बा' उपाधि से विभूषित ।

सामकालीन साहित्यिक चक्रवर्तन सहाय 'चक्रवर्तन' चित्रकला सहाय एवं जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, रघुवीर नारायण, 'विद्या' । सम्पर्क 'विद्या'-सम्पादन-कास में एवं 'महापाम्बा-मण्डल' (कलकत्ता) में ।

स्वर्गीय व्रजनन्धन सहाय 'व्रजवत्सल'
जन्म १८७४ ई० (भाद्र शुक्लाष्टमी सं० १९३१ वि०) ।
निधन २० अक्टूबर, १९३६ ई० (भाद्रपुष्यमा सुक्वार, सं० ३०३३ वि०) ।
मूल निवास-स्थाव अरिपारपुर (बड़ का गाँव), जिला साहाबगढ़ (बिहार) ।
बोध-परम्परा पिता चित्रकला सहाय भारतीय-मुग के एक सम्मान्य लेखक (इतिहास 'पोस्वाधी मुन्शीदास' 'भारतीय इतिहास' 'उपनिषद् सन्त रूपरत्नाली'), 'समाप्तापूर्ति' पत्रिका के सम्पादक (देहान्त के बाद 'चक्रवत्सल' की द्वारा सम्पादित) ।

प्रिया-बीसा मया बिला स्कूल से इच्छेस। बी० ए० कॉलेज (पटना) से बी० ए०। पटना नॉ-कॉलेज से बी० ए०।

कृत्स्न मौलिक उपन्यास 'सौन्दर्योपासक' (मयठी और बुजराठी में अनूदित) 'साक चीन' (बुजराठी में अनूदित) 'विस्मृत सम्राट् और 'विराजवर्धन'। 'मैथिल कोशिक विद्यापति' (बाप मा० प्र० सभा)। 'कर्मक मार्ग' (नाटक), 'उदय' 'बुझा बर' (ग्रहण)। समय-वर्ष ई० दर्शन पुस्तकों के लेखक। 'साहित्य' (पटना) में प्रकाशित कुछ संस्मरण।

विशेष 'आवरी-हिर्त पिनी-पत्रिका' 'समस्यापुति प्रकाश', 'विद्या' प्रेमामक्ति-संसारक' आदि का सम्पादन। बिहार हिन्दी-साहित्य सम्मेलन चतुर्विंश अबिधेदन (१९३१ ई० वेनुसंघम मुषेर) के समापति। १९३० ई० में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से सर्वप्रथम बयोबुद्ध साहित्यिक-सम्मान पुरस्कार से पुरस्कृत।

सम्पक: पंचम अखिक-भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन लखनऊ में (१९१४ ई०)।

हास्यरसावतार पत्रित लण्मावप्रसाद चतुर्वेदी

जन्म १८७१ ई०।

निधन १९३९ ई०।

मूल निवाक-म्हाम, मळमपुर, बिका मुषेर (बिहार)।

कृत्स्न 'भारत की वर्तमान बधा', 'स्वदेशी आन्दोलन', 'बल्लभ मासुठी' 'संसार-बक', 'पुञ्जाल' 'विचित्र विवरण' ('गुडिबर्त ड बस' का हिन्दी-रूपांतर), 'गणशाळा' 'मधुर-मिठन' 'बनुप्रास जन्वेषण'।

विशेष सम्पादक सहकारी सम्पादक, 'हितवादी' (१९०३)। तत्कालीन पत्र 'भारत-मित्र' में अम्म-किन्नेव भी लिखते रहे।

समस्त अखिक-भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का बारहवां अबिधेदन (साहीर, सं० १९७९), बिहार-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का प्रथम वापिकोत्सव। -

अमरातीन साहित्यिक पं० सकळनायक वर्मा बाबू स्वामिभर बाबू,

पं० बहरीनायकजी चौधरी 'प्रेमबन', महावीरप्रसाद द्विवेदी ।
 सम्बन्ध विधिपत्र 'मठवाला'-मध्यक में । अम्ब अक्सर—पं० श्रीधर
 पाठक के सम्पादित्व में हुए अखिल-भारतीय हिन्दी-साहित्य
 सम्मेलन के पाँचवें अधिवेशन (ससगढ़, १९१४) में बाबू
 स्वामसुन्दर दास के सम्पादित्व में हुए अखिल-भारतीय हिन्दी
 साहित्य-सम्मेलन के छठे अधिवेशन (प्रयाग) में ।

कलकत्ता प्रवास के संस्मरण

[कलकत्ता-प्रवास-काल १९२१-२६]

१९२१ 'भारवाड़ी-सुधार-समिति' (भारत बिहार) के उत्साहधान में
 आपके सम्पादकत्व में 'भारवाड़ी-सुधार' नामक सचित्र मासिक
 पत्र निकला इसी की छपवाने के सिद्धिपत्रों में पहले-पहल कलकत्ता
 जाना पड़ा । यह पत्र दो वर्ष (जुलाई, १९२३ तक) चला ।

१९२२ नवम्बर महीने से 'आदर्श' नामक मासिक पत्र का सम्पादन भी
 शुरू कर दिया था । यह पत्र पाँच-छ वर्षों तक ही निकल सका ।

१९२३ अगस्त महीने में झांझरस-प्रधान 'मठवाला' (साप्ताहिक) के
 साथ 'मठवाला-मध्यक' की स्थापना हुई । इस मध्यक में आप
 १९२६ तक रहे । इस अवधि में आपने 'मीठी' 'भोतमाला'
 'उपन्यास-संरक्ष' 'सम्बन्ध' आदि पत्र-पत्रिकाओं का भी सम्पादन
 किया ।

सम्बन्ध त्रिन साहित्यिकों से हुआ उनमें से नाम उल्लेखनीय हैं
 रामनाथ वर्मा बाबू महादेवप्रसाद घेठ, सूर्यकान्त द्विपाठी
 'निराशा' भूमी नवजातिकाल श्रीवास्तव बाबू कनकप्रसाद
 चौधरी पं० अश्वमेधर पाठक पं० रामचन्द्र द्विवेदी बाबू
 बलदेवप्रसाद घरे, पं० ईश्वरीप्रसाद वर्मा पं० कार्तिकेश्वर
 मुखोपाध्याय, बंजनाथ केरिया । पारसी विप्रेरिक्त कम्पनी के
 कुछ नाटक-सेपकों से भी सम्बन्ध हुआ पं० नारायणप्रसाद
 'बैठाव' बाबू हरिप्रसाद 'जीहर' पं० तुलसीदास 'चैत्र' भागा
 हय 'करमीठी' (इन कपकों में कुछ दिनों रचनाएँ भी की थी) ।

स्वर्गीय आचार्य अग्रसेखर दास्त्री

जन्म : १८८१ ई० ।

निधन : १९३४ ई० ।

मूल निवास-स्वान मिमेज जिला साहाबाद (बिहार) ।

विद्या-वीणा प्रारम्भिक शिक्षा कुमरौष-राज (साहाबाद) की संस्कृत पाठशाला में; फिर नबीसुह कॉलेज (काशी) में। महामहोपाध्याय प० गंगाधर दास्त्री (प० रामाबहार घर्मा के कुछ काशी के एक सम्प्रदाय पंडित) के शिष्य। दर्शनशास्त्र तथा काव्यशास्त्र में विशेष अनुकूल। साहित्यशास्त्र पद्यास्त्री।

प्रमुख मौखिक पुस्तक 'हरिद्वय' 'मच्छरि' 'विषया के पत्र' 'समाज का कौड़' 'भाष्य की सती नारियाँ'।

हिन्दी-अनुवाद 'वास्मीकि रामायण' (७ खण्डों में) 'महा-भाष्य' (मासिक खण्डों में अपूर्ण) धीमदभागवत'।

विदेश लेख 'द्विदोषी की एकनिष्ठ साधना' (द्विदोषी-अभि-मन्यन-ग्रन्थ)।

विशेष सम्पादक 'छाया' (संस्कृत मासिक) 'समाज' (हिन्दी मासिक), 'विज्ञा' (हिन्दी साप्ताहिक जिसके पूर्व-सम्पादक प० छद्मनारायण घर्मा प० ईश्वरीप्रसाद घर्मा)।

साहित्य-मन्त्री प्रयाग अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन।

सम्पर्क द्विदोषी-अभिमन्यन-ग्रन्थ छपने के समय प्रयाग में जब आप 'छाया' के सम्पादक थे। फिर, पटना तथा कलकत्ता (मदराला मण्डल) काशी आदि के प्रवास-काल में।

स्वर्गीय कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय

जन्म : १८९७ ई० ।

निधन

मूल निवास-स्वान काशीबाड़ी छपरा (बिहार)।

बचपन-परम्परा मद्रास की सही में पूर्वज बंगाल से बिहार आये। विद्वान् भवानीचरण मुखोपाध्याय ने जमीनदारी सही के अग्रिम वर्ण में

छमरा से पं० अम्बिकादेव व्यास के सम्पादकत्व में 'धारम सरोज' नामक हिन्दी मासिक पत्रिका निकाली थी—पिता—
काशीकर मुञ्जोपाध्याय ।

कृतित्व मौलिक पुस्तक 'मुस्तफ़ कमाळ पाठा' 'सती सुभद्रा' 'मणिपुर का इतिहास', 'सावित्री-व्रतमान' 'गङ्गा-सम्यक्ती' 'सती पार्वती' 'सीतादेवी', 'सैव्या-हरिश्चन्द्र' 'सती सकुन्तला' 'देवी शीपरी' 'भ्रम-निकृञ्ज' ।

अनुवाद बंका से—'भीष्मकथा' चरित्र के कुछ उपन्यास अंग्रेजी से—'अन्य-रहस्य के कुछ अर्थ । बंका और अंग्रेजी से अनुवादित विशेषतः आर्युषी-रोमांच कथा-साहित्य । एषवाम से लिखी पुस्तकें 'विदोही राजा' (के० एम० चारुदाज) 'कमलता रहस्य' (पोकखोलानन्द) । बूतर्षे के नाम से किसी अनेक पुस्तकें ।

पुस्तक 'कुटीर-दिस कला' धामभाभी की सेती पर भी एक छोटी-सी पुस्तक ।

समकालीन साहित्यिक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा आदि ।

अन्यक विशेषतः कमलता-प्रवास-काल में फिर छपय के राजेश्वर-कॉलेज में रहने की अवधि में (लगभग १९४० से १९४३ तक) ।

अज्ञेय पंडित दृष्टान्तिकारी मिश्र

जन्म १८९० ई० ।

निधन १९२९ ई० ।

मूल निवास-रवान गन्धीजी विमल सीतापुर (उ० प्र०) ।

बंका-परम्परा मिश्रबन्धुओं से कौटुम्बिक सम्बन्ध । पूर्वज—बजभावा के मध्यप्रतिष्ठ कवि । पिता—बुलसकिछोर मिश्र 'बजरत्न' पिता—रठिकविहारी मिश्र ।

शिक्षा रीति इन्टेल यनर्नमेष्ट हाईस्कूल सीतापुर बी० ए० १९१३ कनिष्ठ कॉलेज लखनऊ एम० ए० बी० भवाम । (सुदूरपथ १९१० से १९२४ तक बचालत) ।

साहित्यिक जीवन छात्रावस्था से ही 'समाप्त' (काकाकाकर से प्रकाशित) में लिखना प्रारम्भ। उपरोक्त 'मर्वादा', 'रघु' 'बन्धुव' आदि में कविताएँ और लेख।

इतिहास नीतिक पुस्तक 'बीन का इतिहास' 'देव और बिहारी'। सम्पादित ग्रन्थ 'समाप्ति' 'मकरम तरंग' 'मतिराम सम्पादनी', 'गटनागर-विमोह' 'मोहन-विमोह'।

विरोध सम्पादक 'साहित्य-समाप्तिक' (१९२१-२८) 'माधुरी'। ईदिक 'मात्र' के सम्पादन-विभाग में भी कुछ कास तक।

सम्पर्क 'माधुरी' के सम्पादन-काल (१९२१-२६) में।

स्वर्गीय श्री रघुबीरमारामजी

जन्म १८८४ ई०।

निधन १९२३ ई०।

मूल निवास-स्वान नया पाँच जिला बारा (बिहार)।

बंदा-परम्परा पूर्वजों में कई विद्वान् साहित्यकार। पिता—अपदेक-काठयण। आपके बंदाजी भी हिन्दी की सेवा में संलग्न।

शिक्षा-बोला (बचपन से ही परोक्षमहास-कृत 'मुदामा-अरि' तथा पौराणिक कथाएँ सुनने से प्रकृति भासिक)। प्रारम्भिक शिक्षा—प० अम्बिकादत्त व्यास तथा प० रामावतार चर्मा की देख रेख में।

इतिहास अंग्रेजी के-साइड वर्कसम्बन्ध 'एटेल बौक बिहार' 'सीता-दहन'। हिन्दी 'रघुबीर रस-समा' 'रघुबीर पद-मुण्ड' 'बिरज कपूर' 'घरल दिले में प्राचीन बीठकाल के स्वप्न' (सोचपूर्ण निबन्ध)। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद पर एक संस्मरण। जीवन के अन्तिम दिनों में 'बिहार का साधुनिक इतिहास' तथा एक आत्मकथा लिख रहे थे (आपके शिष्य स वे ग्रन्थ अधुर्ण रह गए)।

विरोध समस्यति बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन (मुजफ्फरपुर)। सम्मान १९२३ में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से कयोवृद्ध सम्मान पुरस्कार प्राप्त।

सम्बन्धित साहित्यिक भाषोन्मुख के साहित्यसेवियों से अनिच्छ

रिजी सभा' स्वामताम्बुष विहार प्रांतीय-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का पत्रहवीं अधिवेशन (आरा) सम्मान पत्रभूषण ।

आचार्य श्री ललितबिलासम शर्मा

जन्म १९१६ ई० ।

निधन १९६१ ई० ।

मूल निवास-स्वान छपरा (बिहार) ।

वंश-वरम्बरा पिता—महामहोपाध्याय पं० रामानन्दार शर्मा ।

शिक्षा-बीजा एम० ए० (संस्कृत) १९३८ एम० ए० (हिन्दी)

१९४२ । संस्कृत में एम० ए० करके रिसर्च-स्कॉलर, पटना विश्वविद्यालय—विषय 'कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दण्ड विधान' ।

इतिहास मौलिक पुस्तक एवं ग्रन्थ 'इण्डिकोल' 'विप के बौत' 'अकेज के प्रपठ' 'सत्रह कहानियाँ' 'मानदण्ड' 'साहित्य का इतिहास-वर्णन' ।

सम्पादित ग्रन्थ 'लोक-कथा-कोश' 'लोक-साहित्य-आकर' 'लोक-भाषा-परिचय' 'प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण' 'छहस मिथवाणवाली' 'हर्ष-चरित्र' ।

सम्पर्क विशेषण १९४९ से १९६१ तक (बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मासिक पत्र 'साहित्य' का सह-सम्पादन-काल) ।

डॉक्टर दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी

जन्म १९१३ ई० ।

निधन

मूल निवास-स्वान मुबइयाँ जिला बम्पारन (बिहार) ।

वंश-वरम्बरा पिता—भायवतप्रसाद ।

शिक्षा-बीजा मैट्रिक—भोठिहाटी जिला स्कूल, १९२९ । बी० ए० ऑनर्स

(अंग्रेजी)—पी० बी० बी० (वर्तमान समय तिहु) कॉलेज,

मुजफ्फरपुर । एम० ए०—पटना विश्वविद्यालय, १९३७ । पी-

एच० डी०—सम्बल विश्वविद्यालय १९४९ ।

कृतित्व मौलिक पुस्तक : 'रजनी और ठारे' ।

अनुबाद 'अधिको' । पास्तरनाक की कुछ कविताओं के अनुबाद भी प्रकाशित किन्तु असंगृहीत । माइ० ए० रिचर्ड्स की 'प्रिंसिपल्स ऑफ़ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' का अनुबाद बिहार-राष्ट्रमापा-परिषद् के ययुरोप पर कर रहे बे को देहान्त से अपूर्ण रह गया ।

सम्पादित ग्रन्थ 'निवेदिता' (सह-सम्पादक) ।

विशेष वी० बी० सी० (कल्बन) में १९४७ से १९४९ तक आकाशवाणी (पटना) के वाक्कार । सभापति चम्पारन बिला-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का वाक्पिक, बभिवेष्टन (१९३९) । सहाय बिहार-राष्ट्रमापा-परिषद् का संवाकक-सम्बन्ध कार्यकारिणी समिति (बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन) स्थायी समिति (वि० हि० सा० स०) के स्वामी सचय (अधिवि बोस बर्ष) । ('पाठक' 'पुस्तकालय-सन्देश' 'ज्योत्स्ना' की पणपहर्षवाणी समितियों में) । 'माधुरी' 'मुखा' 'हुँस' 'आमरण' 'विशाल भाव' 'बिजली' 'पारिजात', 'पाठक' 'अबन्धिका' 'आनन्द' आदि पत्रिकाओं में लगभग ३० वर्ष तक कविताएँ कहानियाँ वैयक्तिक तथा आकाशवाणीक निबन्ध समक-समय पर प्रकाशित ।

